...प्रमाण्य कर दिया।

सरकार देशमें औद्योगिक विकास
वर्तमान स्थितिको देखते हुए बड़े
पारमाणविक विद्युत संयंत्रकी स्थापना
...नहीं है। श्री मिन वसुके प्रश्न
उत्तरमें ऊर्जा राज्यमन्त्री प्रोफेसर
... सिद्दने बताया कि स्थापनाका
... किसी प्रधान मन्त्रीने किया था
... ऊपर विचार किया गया किन्तु
औद्योगिक विकासकी वर्तमान स्थिति
देखते हुए उस सुझावको नामंजूर
कर दिया गया। श्री वसुने पूछा था
... रूसी सहायतासे बड़े पारमाणविक
विद्युत संयन्त्रकी स्थापनाके लिए
... भारत ... की गयी
है।

मन्त्री सँग ... उक्त
आशयका मत व्यक्त किया। श्री
वाल्डेमन इससे पहले चीनके प्रधान
मन्त्रीसे भी भेंटकी।

... नेताओंसे विचार-विमर्शके
बाद श्री वाल्डेमनने संवाददाताओंसे
कहा कि हिन्द-चीनकी समस्याओंके
बारेमें हमने चीनी नेताओंसे विचार-
विमर्श किया। प्रतीत होता है कि
चीन और वियतनामके बीच विश्वास-
का अभाव ही ... का मूल कारण
है। श्री वाल्डेमन और ... वि
...उपप्रधान मन्त्रीके इस कथनकी
पुष्टिकी कि चीनने वियतनामको
फिर सबक सिखानेका ... अधि-
कार सुरक्षित रखा है।

## सिंचाई और दवाई बंद

गाजीपुर, १ मई। कासिमा-
बाद क्षेत्रमें बिजलीकी अनियमित
आपूर्ति होनेसे नागरिक परेशान
है। बिजलीके अभावमें सिंचाई
और दवरीका कार्य बन्द है।—भा.स.

## बिहारके मंत्रियोंमें विभागोंका वितरण

(पटना कार्यालय)

पटना, १ मई। बिहारमें श्री राम-
सुन्दरदास मंत्रिमंडलके आठ सदस्योंमें
... विभागोंका बंटवारा कर दिया
गया।

मुख्य मंत्री श्री दासकी अनुशंसापर
... राज्यपाल श्री कृष्णवल्लभ
नारायण सिंहने श्री कैलाशपति मिश्र
को वित्त एवं सांख्यिकी, श्री मनेश्वर
... सिंहको सिंचाई और विद्युत
... ललित ... को वन और आदि-
वासी कल्याण, श्री तेज नारायण
यादवको पशु और मत्स्य पालन, श्री
... नारायण यादवको कृषि, श्री
... प्रसादको लोक स्वास्थ्य अभि-
यंत्रण और मोहम्मद सईदको पर्यटन
... विभाग आवण्टित किया है।
इसके अतिरिक्त गृह, उद्योग, शिक्षा
... श्रम एवं नियोजन स्वास्थ्य,
... और भूमि सुधार, आपूर्ति
और ... विभागको मुख्यमंत्री
... अपने जिम्मे रखा है।

## ... की उपेक्षा करने





# तर्कसंग्रहः ।

न्यायबोधिनी–पदकृत्यव्याख्योपेतः

विषमस्थलटिप्पणीयुतश्च

मूल्यं ६ आणकाः ।

# किंचित्प्रास्ताविकम् ।

श्री ६ गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ।

दुःखपङ्कनिमग्नमेतज्जगदुज्जिहीर्षुः परमकारुणिको भगवानक्षपादः कणादश्च क्रमेण पञ्चलक्षणीमान्वीक्षिकीं दशलक्षणीं च विरचयामासतुः । तत्राद्यां पञ्चलक्षणीमान्वीक्षिकीं न्यायशास्त्रपदेन व्यपदिशन्ति, परार्थानुमानापरपर्यायस्य न्यायस्य सकलविद्यानुग्राहकतया सर्वकर्मानुष्ठानसाधनतया प्रधानत्वात् । असाधारण्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् । अपरां च दशलक्षणीं वैशेषिकतन्त्रपदेन । तत्र कणभक्षकस्य वैशेषिकपदव्यपदेश्यत्वे हेतुं बोधयन्नयं श्लोकः—

द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे ।
यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः ॥ १ ॥ इति ।

तदेतच्छास्त्रद्वयमपि श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायादुत्तरमविभक्तमभूत् । श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायैः तत्त्वचिन्तामणिर्नाम संनिवेशितोभयशास्त्ररहस्यः संदर्भः प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दखण्डैश्चतुर्धा प्रविभक्तो व्यरचि । ततः प्रभृति प्रकरणान्यपि तथाविधान्येवाऽभवन् । तेष्वयं तर्कसंग्रहोऽतिसंक्षेपेण शास्त्रद्वयस्यापि तत्त्वं स्पष्टं प्रतिपादयति । न्यायबोधिनीसंज्ञिकास्य टीकापि न्यायशास्त्रीयपारिभाषिकशब्दानां शीघ्रमनायासेन परिचायिका । एवं पदकृत्यमपि लक्षणगतशब्दानां प्रयोजनं प्रदर्शयति । तस्मादेतट्टीकाद्वयमपि प्रथमकल्पिकानां बहूनां बहुतरमुपकारमातनोति । अत एतट्टीकाद्वयेन संयोज्यैष तर्कसंग्रहः सम्यक्परिशोध्य क्वचिट्टिप्पणीपरिष्कृतोऽध्येतॄणामुपकाराय मुद्रापयित्वा प्रकाश्यते—

विदुषामनुचरः

बाके इत्युपाह्वो महादेवशर्मा ।

# चतुर्थावृत्तिः ।

अस्यां चतुर्थावृत्तौ न्यायबोधिनीं प्राचीनलिखितपुस्तकमनुसृत्य पर्यशोधयम्; न्यवेशयं च बहुषु स्थानेषु सुगमां विस्तरतष्टिप्पनीं या मनागिव विद्यार्थिनां विषमस्थानेष्वालम्बनं भविष्यतीति शम् ।

याक्के इत्युपाह्वो महादेवशर्मा ।

---

## विशेषतो द्रष्टव्यम् ।

तृतीयपृष्ठे ३ य टिप्पन्यां 'द्रव्यत्वाभावसामानाधिकरण्ये सति' इत्यत्र 'द्रव्यत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे सति' इति पठनीयम् ।



# अनुक्रमणिका ।


| विषयः | | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| मङ्गलाचरणम् ... ... | | १ |
| शास्त्रलक्षणम्<br>उद्देशलक्षणम्<br>लक्षणलक्षणम्<br>परीक्षालक्षणम् | प० ... | ,, |
| पदार्थोद्देशः ... ... | | ,, |
| शक्त्यादेरतिरिक्तत्वसमर्थनं तन्निरसनं च | न्या० | १–२ |
| द्रव्योद्देशः ... ... | | ,, |
| अन्धकारस्य दशमद्रव्यत्वशङ्का तन्निराकरणं च | न्या० | ,, |
| द्रव्यसामान्यलक्षणम् ... | | ,, |
| गुणोद्देशः ... ... | | ,, |
| कर्मविभागः ... ... | | ,, |
| सामान्यविभागः ... ... | | ,, |
| विशेषकथनम् ... ... | | ३ |
| समवायकथनम् ... ... | | ,, |
| अभावभेदाः ... ... | | ,, |
| पृथिवीनिरूपणम् ... ... | | ,, |
| अव्याप्तिलक्षणम्<br>अतिव्याप्तिलक्षणम्<br>असंभवलक्षणम् | प० ... | ,, |
| अपां निरूपणम् ... ... | | ४ |
| तेजोनिरूपणम् ... ... | | ,, |
| वायुनिरूपणम् ... ... | | ,, |
| अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवानां निष्कृष्टलक्षणानि | न्या० | ५ |
| आकाशनिरूपणम् ... ... | | ,, |
| विभुत्वलक्षणम्<br>मूर्तत्वलक्षणम्<br>भूतत्वलक्षणम् | न्या० ... | ६ |
| कालः ... ... ... | | ,, |

| विषयः | | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| दिक् ... ... ... | | ६ |
| आत्मा ... ... ... | | ,, |
| मनः ... ... ... | | ७ |
| रूपम् ... ... ... | | ,, |
| रसः ... ... ... | | ८ |
| गन्धः ... ... ... | | ९ |
| स्पर्शः ... ... ... | | ९ |
| रूपादिचतुष्टयस्य पाकजत्वादिभेदेनाधिकरणविचारः ... | | ,, |
| पाकविचारः न्या० ... ... | | ,, |
| संख्या ... ... ... | | १० |
| परिमाणम् ... ... ... | | ,, |
| पृथक्त्वम् ... ... ... | | ११ |
| संयोगः ... ... ... | | ,, |
| विभागः ... ... ... | | ,, |
| परत्वापरत्वे ... ... ... | | ,, |
| गुरुत्वम् ... ... ... | | १२ |
| द्रवत्वम् ... ... ... | | ,, |
| स्नेहः ... ... ... | | ,, |
| शब्दः ... ... ... | | ,, |
| बुद्धिः ... ... ... | | १३ |
| स्मृतिः ... ... ... | | ,, |
| अनुभवः ... ... ... | | १४ |
| अयथार्थानुभवः ... ... | | १५ |
| यथार्थानुभवविभागः ... | | ,, |
| तत्करणविभागः ... ... | | १६ |
| करणलक्षणम् ... ... | | ,, |
| असाधारणत्वम्<br>साधारणत्वम् | न्या० ... | ,, |
| व्यापारलक्षणम् प० ... | | ,, |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| कारणलक्षणम् ... ... | १६ | पक्षः ... ... ... | ३१ |
| अन्यथासिद्धिलक्षणम् प० ... | १७ | सपक्षः ... ... ... | ३२ |
| कार्यलक्षणम् ... ... | ,, | विपक्षः ... ... ... | ३३ |
| कारणविभागः ... ... | ,, | हेत्वाभासविभागः ... ... | ,, |
| समवायिकारणम् ... ... | ,, | सव्यभिचारः ... ... | ,, |
| असमवायिकारणम् ... | १८ | साधारणः ... ... ... | ३४ |
| निमित्तकारणम् ... ... | १९ | असाधारणः ... ... | ,, |
| करणलक्षणोपसंहारः ... | ,, | अनुपसंहारी ... ... | ,, |
| प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणम् ... | २० | विरुद्धः ... ... ... | ,, |
| प्रत्यक्षप्रमालक्षणम् ... | ,, | सत्प्रतिपक्षः ... ... | ३५ |
| निर्विकल्पकम् ... ... | २१ | असिद्धविभागः ... ... | ,, |
| सविकल्पकम् | ,, | आश्रयासिद्धः ... ... | ,, |
| संनिकर्षविभागः ... ... | २२ | स्वरूपासिद्धः ... ... | ,, |
| संयोगसंनिकर्षोदाहरणम् ... | २३ | व्याप्यत्वासिद्धः ... ... | ३६ |
| संयुक्तसमवायसंनिकर्षोदाहरणम् | ,, | त्रिविधोपाधिप्रदर्शनम् प० | ३७ |
| संयुक्तसमवेतसमवायसंनिकर्षोदा० | ,, | बाधितः ... ... ... | ३८ |
| समवायसंनिकर्षोदा० ... | ,, | उपमानम्—उपमितिश्च ... | ,, |
| समवेतसमवायसंनिकर्षोदा० | ,, | शब्दः ... ... ... | ३९ |
| विशेषणविशेष्यभावसंनिकर्षोदा० | ,, | आप्तः ... ... ... | ,, |
| प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणोपसंहारः | ,, | वाक्यम् ... ... ... | ,, |
| अनुमानलक्षणम् ... ... | २४ | शक्तिः ... ... ... | ,, |
| अनुमितिलक्षणम् ... ... | ,, | लक्षणा, गौणी लक्षणा, शुद्धा लक्षणा, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजहल्लक्षणा — न्या० ... | ३९ |
| परामर्शः ... ... ... | ,, | | |
| व्याप्तिः ... ... ... | २५ | | |
| पक्षधर्मता ... ... ... | ,, | | |
| अनुमानविभागः ... ... | २६ | | |
| स्वार्थानुमानम् ... ... | ,, | | |
| परार्थानुमानम् ... ... | ,, | वाक्यार्थज्ञानहेतवः ... | ,, |
| पञ्चावयवाः ... ... | ,, | आकाङ्क्षादीनां लक्षणादीनि... | ४० |
| अनुमानलक्षणोपसंहारः ... | २८ | वाक्यविभागः ... ... | ४१ |
| लिङ्गविभागः ... ... | ,, | शाब्दज्ञानम् ... ... | ,, |
| अन्वयव्यतिरेकि ... ... | ,, | अयथार्थानुभवविभागः ... | [illegible] |
| केवलान्वयि ... ... | २९ | संशयः ... ... ... | ,, |
| केवलव्यतिरेकि ... ... | ३० | [illegible] | ,, |

## अनुक्रमणिका ।


| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| तर्कः ... ... ... | ४२ | स्थितिस्थापकः ... ... | ,, |
| अस्मृतिः ... ... ... | ,, | कर्मनिरूपणम् ... ... | ४५ |
| सुखम् ... ... ... | ,, | सामान्यनिरूपणम् ... ... | ४६ |
| दुःखम् ... ... ... | ,, | विशेषनिरूपणम् ... ... | ,, |
| इच्छा–द्वेषः—प्रयत्नः ... | ४३ | समवायनिरूपणम् ... ... | ,, |
| धर्मः–अधर्मः ... ... | ,, | प्रागभावः ... ... ... | ४७ |
| आत्मविशेषगुणाः ... ... | ,, | प्रध्वंसाभावः ... ... | ,, |
| संस्कारविभागः ... ... | ४४ | अत्यन्ताभावः ... ... | ,, |
| वेगः ... ... ... | ,, | अन्योन्याभावः ... ... | ,, |
| भावना ... ... ... | ,, | उपसंहारः ... ... ... | ४८ |






श्रीः



# तर्कसंग्रहः ।

न्यायबोधिनी—पदकृत्यव्याख्योपेतः ।

**निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।**
**बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥**

## न्यायबोधिनी ।

अखिलागमसंचारि श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।
ध्यात्वा गोवर्धनसुधीस्तनुते न्यायबोधिनीम् ॥ १ ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ निबध्नाति—**निधायेति** ॥ १ ॥

## पदकृत्यम् ।

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशंकरं परम् ।
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥ १ ॥
यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।
तस्माद्धितकरं वाक्यं वक्तव्यं विदुषा सदा ॥ २ ॥

विश्वेशं जगत्कर्तारं श्रीसाम्बमूर्तिं हृदि मनसि निधाय नितरां धारयित्वा गुरुवन्दनं च विधाय कुर्वे इत्यर्थः । **बालेति** । अत्राधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रो बालः । व्यासादावतिव्याप्तिवारणायानधीतन्यायेति । स्तनंधयेऽतिप्रसक्तिवारणायाधीतव्याकरणेति । **सुखेति** । सुखेनानायासेन बोधाय पदार्थतत्त्वज्ञानायेत्यर्थः । तर्क्यन्ते प्रमितिविषयीक्रियन्ते इति तर्का द्रव्यादिपदार्थास्तेषां संग्रहः संक्षेपेणोद्देशलक्षणपरीक्षा यस्मिन् स ग्रन्थः । नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनमुद्देशः । यथा द्रव्यं गुणा इति । असाधारणधर्मो लक्षणम् । यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्याः । लक्षितस्य लक्षणं संभवति न वेति विचारः परीक्षा । अत्रोद्देशस्य पक्षज्ञानं फलं लक्षणस्येतरभेदज्ञानं परीक्षाया लक्षणे दोषपरिहार इति मन्तव्यम् ॥

**द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः ॥**

(न्या०) अथ पदार्थान्विभजते—**द्रव्येति** । तत्र सप्तग्रहणं र्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यमिति व्याप्तिलाभाय । ननु

---

१ उद्देशस्यापि विभागसमानविषयत्वाद्धर्मास्तित्वसिद्धिरतो नास्योद्देशग्रन्थस्यानुपपत्तिः ।

शक्तिपदार्थस्याष्टमस्य सत्त्वात्कथं सप्तैवेति । तथाहि—वह्निसंयुक्तेन्धनादौ सत्यपि मणिसंयोगे दाहो न जायते । तच्छून्येन तु जायते । अतो मणिसमवधाने शक्तिर्नश्यति मण्यभावदशायां दाहानुकूलशक्तिरुत्पद्यत इति कल्प्यते । तस्माच्छक्तिरतिरिक्तः पदार्थ इति चेत् । न । मणेः प्रतिबन्धकत्वेन मण्यभावस्य कारणत्वेनैव निर्वाहे मणिसमवधानासमवधानाभ्यामनन्तशक्तितद्ध्वंसतत्प्रागभावकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । तस्मात्सप्तैवेति सिद्धम् ॥

**तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव॥**

(न्या०) द्रव्याणि विभजते—**पृथिवीति** । नन्वन्धकारस्य दशमद्रव्यस्य सत्त्वात्कथं नवैवेति । तथाहि—नीलं तमश्चलतीति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वेन क्रियाश्रयत्वेन च द्रव्यत्वं सिद्धम् । नच क्लृप्तद्रव्येष्वन्तर्भावात्कुतो दशमद्रव्यत्वमिति वाच्यम् । आकाशादिपञ्चकस्य वायोश्च नीरूपत्वान्न तेष्वन्तर्भावः । तमसो निर्गन्धत्वान्न पृथिव्यामन्तर्भावः । जलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वान्न तयोरन्तर्भावः । तस्मात्तमसो दशमद्रव्यत्वं सिद्धमिति चेत् न, तेजोभावरूपत्वेनैवोपपत्तावतिरिक्तत्कल्पनायां मानाभावात् । नच विनिगमनाविरहात्तेज एव तमोऽभावस्वरूपमस्त्विति वाच्यम् । तेजसोऽभावस्वरूपत्वे सर्वानुभूतोष्णस्पर्शाश्रयद्रव्यान्तरकल्पने गौरवात् । तस्मादुष्णस्पर्शगुणाश्रयतया तेजसो द्रव्यत्वं सिद्धम् । तमसि नीलत्वादिप्रतीतिः भ्रान्तिरेव, दीपापसरणक्रियाया एव तत्र भानात् ॥

(प०) **तत्रेति** । तत्र सप्तपदार्थमध्ये इत्यर्थः । द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः । एवं तत्रेति पदं चतुर्विंशतिर्गुणा इत्यादिनाऽप्यन्वेति । द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

**रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः ॥ उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि ॥ परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ॥ नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता[१]**

१ आदिशब्दाचलनस्य ग्रहणम् ॥

एव । समवायस्त्वेक एव । अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ॥

इत्युद्देशग्रन्थः ॥

(प०) परमपरं चेति । परसामान्यमपरसामान्यमित्यर्थः । परत्वं चाधिकदेशवृत्तित्वम् । अपरत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वम् ॥

तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा । नित्याऽनित्या च । नित्या परमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा । पुनस्त्रिविधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति । विषयो मृत्पाषाणादिः ॥

(न्या०) गन्धवतीति । गन्धवत्त्वं[1] पृथिव्या लक्षणम् । लक्ष्या पृथिवी । पृथिवीत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् । यद्धर्मावच्छिन्नं लक्ष्यं स धर्मो लक्ष्यतावच्छेदकः । यो धर्मो यस्यावच्छेदकः स तद्धर्मावच्छिन्नः । तथाच लक्ष्यतावच्छेदकं पृथिवीत्वं चेल्लक्ष्यता पृथिवीत्वावच्छिन्ना । गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं पृथिव्या लक्षणम् ॥ एवं शीतस्पर्शवत्त्वादिलक्षणेषु जलादीनां लक्ष्यता जलत्वादीनां लक्ष्यतावच्छेदकत्वं च बोध्यम् ॥

(प०) तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यम् । यथा गोः सास्नादिमत्त्वम् । अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् । अतएव गोर्न कपिलत्वं लक्षणं तस्याव्याप्तिग्रस्तत्वात् । अतिव्याप्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् । अत एव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणं तस्यातिव्याप्तिग्रस्तत्वात् । असंभवश्च लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम् । यथा गोरेकशफवत्त्वं न लक्षणं तस्यासंभवग्रस्तत्वात् । नित्येति । ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वम् । ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ध्वंसभिन्नेति विशेषणम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वाऽनित्यत्वम् । यद्भोगायतनं तदेव शरीरं चेष्टाश्रयो वा । इन्द्रियमिति । चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धग्राहकमिति । कालादावति-

---

१ अत्राधिकरणाधेयमनुवर्तनाद्गन्धवत्त्वमित्यस्य गन्धाधिकरणत्वमर्थः । तच्च समवायेन बोध्यम् । समवायसंबन्धावच्छिन्नगन्धत्वावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतावत्त्वमिति निष्कर्षः । २ उत्पत्तिकालावच्छेदेन घटादावव्याप्तेरतो गर्भितम् । ३ व्याप्यत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वं द्रव्यत्वाभावसामानाधिकरण्ये सति द्रव्यत्वाभाववदवृत्तित्वं, तेन द्रव्यत्वस्य द्रव्यत्वव्याप्यत्वेऽपि न क्षतिः । अव्यापकत्वं वा निवेश्यं, तस्य गुणत्वादिसाधारण्येऽपि तत्र गन्धसमानाधिकरणत्वाभावान्नातिव्याप्तिः ।

प्रसक्तिवारणायेन्द्रियमिति । विषय इति । शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सत्युपभोगसाधनं विषयः । शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । कालादिवारणाय जन्यत्वे सतीत्यपि बोध्यम् ॥

शीतस्पर्शवत्य आपः । ता द्विविधाः । नित्या अनित्याश्च । नित्याः परमाणुरूपाः । अनित्याः कार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरुणलोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ॥

(प०) शीतेति । तेजआदावतिव्याप्तिवारणाय शीतेति । आकाशेवारणाय सत्वेति । कालादावतिप्रसक्तिवारणाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम् । इन्द्रियमिति त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय रसग्राहकमिति । रसनेन्द्रि[1]यरससंनिकर्षादावतिव्याप्तिनिरासायेन्द्रियमिति । सरिदिति । आदिना तडागहिमकरकादीनां संग्रहः ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः । तच्च द्विविधम् । नित्यमनित्यं च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम् । इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति । विषयश्चतुर्विधो भौमदिव्योदर्याकरजभेदात् । भौमं वह्न्यादिकम् । अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि । भुक्तस्य परिणामहेतुरुदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि ॥

(प०) उष्णेति । जलादावतिव्याप्तिनिरासायोष्णेति । कालादावतिप्रसङ्गवारणाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम् । इन्द्रियमिति । घ्राणादावतिव्याप्तिवारणाय रूपग्राहकमिति । कालादावतिव्याप्तिनिरसनायेन्द्रियमिति । भेदादिति पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते । भौममिति । आदिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतेः परिग्रहः । विद्युदादीति । आदिनार्कचन्द्रादीनां परिग्रहः । भुक्तेति । भुक्तस्यान्नादेः पीतस्य जलस्य परिणामो जीर्णता तस्य हेतुरुदर्यमित्यर्थः । सुवर्णेति । आदिना रजतादिपरिग्रहः ।

रूपरहितः स्पर्शवान्वायुः । स द्विविधः । नित्योऽनित्यश्च नित्यः परमाणुरूपः । अनित्यः कार्यरूपः । पुनस्त्रिविधः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वायुलोके । इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति । विषयो वृक्षादिक-

१ रसनेन्द्रियस्य रसेन सार्धं यः संनिकर्षः संयुक्तसमवायस्तद्वारणायेत्यर्थः ।

म्पनहेतुः । शरीरान्तःसंचारी वायुः प्राणः । स चैको- ऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञां लभते ॥

(न्या०) एवं पृथिव्यादित्रिकं निरूप्य वायुं निरूपयति—रूपरहित इति । रूपरहितत्वे सति स्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम् । सति सप्तम्या विशिष्टार्थकतया रूपरहितत्वविशिष्टस्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम् । विशेषणांशानुपादाने स्पर्शवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वे पृथिव्यादित्रिकेऽतिव्याप्तिः । तद्वारणाय विशेषणोपादानम् । तावन्मात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिः । तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम् । यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यभूतगोभिन्नमहिष्यादावतिव्याप्तिस्तत्रापि शृङ्गित्वस्य विद्यमानत्वात् । अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् लक्ष्यैकदेशे लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतकचिल्लक्ष्ये लक्षणासत्त्वमव्याप्तिरित्यर्थः । यथा गोर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतश्वेतगवि अव्याप्तिस्तत्र नीलरूपाभावात् । असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम् । यथा गोरेकशफवत्त्वम् । गोसामान्यस्य द्विशफवत्त्वेन एकशफवत्त्वस्य कुत्राप्यसत्त्वात् । अतिव्याप्त्यव्याप्त्यसंभवानां निष्कृष्टलक्षणानि—लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिः । अव्याप्तिस्तु लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् । असंभवस्तु लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् ॥

(प०) रूपेति । घटादिवारणाय विशेषणम् । आकाशादिवारणाय विशेष्यम् । इन्द्रियमिति । चक्षुरादिवारणाय स्पर्शग्राहकमिति । कालादावतिव्याप्तिवारणायेन्द्रियमिति । वृक्षेति । आदिपदेन जलादिपरिग्रहः । शरीरान्तरिति । महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम् । मनआदिवारणाय विशेष्यम् । धनंजयवारणाय संचारीति । उपाधीति । मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात्प्राणः, जलादेरधोनयनादपानः, भुक्तपरिणामाय जाठरानलस्य समुन्नयनात्समानः, अन्नादेरूर्ध्वनयनादुदानः, नाडीमुखेषु वितननाद्व्यानः, इति क्रियारूपोपाधिभेदात्तथा व्यवह्रियत इत्यर्थः ॥

---

१ सति सप्तम्या बोधितं वैशिष्ट्यं सर्वत्र सामानाधिकरण्येन बोध्यम् । २ 'लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणे सति' इति पुस्तकान्तरेऽधिकम् ।

**शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ॥**

(न्या०) आकाशं लक्षयति—**शब्दगुणकमिति** । गुणपदमाकाशे शब्द एव विशेषगुण इति द्योतनाय न त्वतिव्याप्तिवारणाय, समवायेन शब्दवत्त्वमात्रस्य सम्यक्त्वात् । **तच्चैकमिति** । अनेकत्वे मानाभावादिति भावः । **विभ्विति** । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् । मूर्तत्वं च क्रियावत्त्वम् । पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्तानि । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेतिपञ्चकं भूतपदवाच्यम् । भूतत्वं नाम बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम् ॥

(प०) **शब्देति** । शब्दो गुणो यस्य तत्तथा । असंभववारणाय शब्दगुणोभयम् । **विभ्विति** । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगि ।

**अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः स चैको विभुर्नित्यश्च ॥**

(न्या०) कालं लक्षयति—**अतीतेति** । व्यवहारहेतुत्वस्य लक्षणत्वे घट इति व्यवहारहेतुभूतघटादावतिव्याप्तिः । तद्वारणाय अतीतादीति विशेषणोपादानम् ॥

(प०) **अतीतेति** । अतीत इत्यादिर्यो व्यवहारोऽतीतो भविष्यन्वर्तमान इत्यात्मकस्तस्यासाधारणहेतुः काल इत्यर्थः । नन्विदं लक्षणमाकाशेऽतिव्याप्तं व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वादिति चेत् । न अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षितत्वात् । न चैवं कण्ठताल्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं, विभुत्वस्यापि निवेशात् ।

**प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च ॥**

(न्या०) दिशो लक्षणमाह—**प्राच्येति** । उदयाचलसंनिहिता या दिक् सा प्राची । अस्ताचलसंनिहिता या दिक्सा प्रतीची । मेरोः संनिहिता या दिक् सोदीची । मेरोर्व्यवहिता या दिक् साऽवाची ॥

(प०) **प्राचीति** । इयं प्राचीयमवाचीयं प्रतीचीयमुदीचीत्यादिव्यवहारासाधारणं कारणं दिगित्यर्थः । हेतुर्दिगित्युच्यमाने परमाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय प्राच्यादिव्यवहारहेतुरिति । आकाशादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम् ॥

**ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधः । जीवात्मा परमात्मा चेति । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव । जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ॥**

---

१ रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः । बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः । वैशेषिका विशेषाः ।

(न्या०) आत्मानं निरूपयति—**ज्ञानाधिकरणमिति** । अधिकरणपदं समवायेन ज्ञानाश्रयत्वलाभार्थम् ॥

(प०) ज्ञानाधिकरणेति । भूतलादिवारणाय ज्ञानेति । कालादिवारणाय समवायेनेत्यपि देयम् । ईश्वर इति । समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवानीश्वरः । जीव इति । सुखादिसमवायिकारणं जीव इत्यर्थः ॥

**सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च ॥**

(न्या०) मनो निरूपयति—**सुखादीति** । उपलब्धिर्नाम-साक्षात्कारः । तथाच सुखदुःखादिसाक्षात्कारणत्वे सति इन्द्रियत्वं मनसो लक्षणम् । इन्द्रियत्वमात्रोक्तौ चक्षुरादावतिव्याप्तिः । अतः सुखादिसाक्षात्कारकारणत्वविशेषणम् । विशेष्यानुपादाने आत्मन्यतिव्याप्तिः । आत्मनः सुखादिकं प्रति समवायिकारणत्वात् । अत इन्द्रियत्वरूपविशेष्योपादानम् ॥

(प०) सुखेति । आत्ममनःसंयोगादिवारणायेन्द्रियमिति । चक्षुरादिवारणाय सुखेति ॥

**चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम् । पृथिवीजलतेजोवृत्ति । तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरशुक्लं जले । भास्वरशुक्लं तेजसि ॥**

(न्या०) रूपं लक्षयति—**चक्षुरिति** । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वं रूपस्य लक्षणम् । विशेष्यमात्रोपादाने रसादावतिव्याप्तिः । अतश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशेषणम् । तावन्मात्रोपादाने रूपत्वेऽतिव्याप्तिः । यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठा जातिस्तदिन्द्रियग्राह्येति नियमात्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नाम चक्षुर्भिन्नेन्द्रियाग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वम् । मात्रपदानुपादाने संख्यादिसामान्यगुणेऽतिव्याप्तिः, चक्षुर्ग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वस्य सत्त्वात् । अतस्तद्वारणाय मात्रपदं, संख्यादेश्चक्षुर्भिन्नत्वगिन्द्रियग्राह्यत्वाच्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नास्ति । अतीन्द्रियगुरु-

---

१ ननाथ 'गुणे शुक्लादयः पुंसि' इत्यनुशासनविरोधः शङ्क्यः । तस्य विशेष्यात्मनि-ष्ठादारविषयत्वादत्र च रूपभिन्नत्वानुपपत्तेः । येनेन्द्रियेण या व्यक्तिर्गृह्यते तद्गता जातिस्तदभावश्च तेनैवेन्द्रियेण गृह्यत इति नियमस्य प्रकृतोपयोगित्वं मात्रोपादानमिदम् ॥

त्वादावतिव्याप्तिवारणाय चक्षुर्ग्राह्येति । अत्र लक्षणे ग्राह्यत्वं नाम प्रत्यक्षविषयत्वम् । अग्राह्यत्वं नाम तदविषयत्वम् । तथाच चक्षुर्भिन्नेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वे सति चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षविषयत्वमिति फलितोऽर्थः । ननु प्रभाघटसंयोगे रूपलक्षणस्यातिव्याप्तिस्तस्य चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणत्वादिति चेन्न । गुणपदस्य विशेषगुणपरत्वात् । न चैवं विशेषगुणत्वघटितलक्षणे संख्यादावतिव्याप्त्यभावान्मात्रपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । जलमात्रवृत्तिसांसिद्धिकद्रवत्वादावतिव्याप्तिवारणाय तदुपादानात् । अथवा चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमद्गुणत्वस्य लक्षणत्वान्न प्रभाघटसंयोगादावतिव्याप्तिः । संयोगत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात् । घटपटसंयोगस्य त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वाच्चद्गतजातेरपि त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात् । यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठजातेरपि तदिन्द्रियग्राह्यत्वात् । अत्रजातिघटितलक्षणे गुणत्वानुपादाने चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति सुवर्णादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय तदुपादानम् । एवं रसादिलक्षणे विशेषणानुपादाने लक्ष्यभिन्नगुणादावतिव्याप्तिः । विशेष्यानुपादाने लक्ष्यमात्रवृत्तिरसत्वगन्धत्वादावतिव्याप्तिः । अतो विशेषणविशेष्ययोरुपादानम् ॥

(प०) चक्षुरिति । रूपत्वादिवारणाय गुणपदम् । रसादिवारणाय चक्षुर्ग्राह्य इति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोगवारणाय गुणपदे विशेषगुणस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादिवारणं संभवतीति मात्रपदं व्यर्थं तथापि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तदावश्यकम् । वस्तुतस्तु परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम् । रूपत्वादिवारणाय गुणपदं तु देयम् । सप्तेति । रूपमित्यनुषज्यते ॥

रसनग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुककषायतिक्तभेदात् षड्विधः । पृथिवीजलवृत्तिः । तत्र पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ॥

(प०) रसनेति । रसत्वादिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय रसनेति । तत्रेति । पृथिवीजलयोरित्यर्थः । षड्विध इति । अत्र रस इत्यनुवर्तते ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः । सुरभिरसुरभिश्च । पृथिवीमात्रवृत्तिः ॥

---

१ अतीन्द्रियं परमाण्वादिरूपं [illegible]

(प०) घ्राणग्राह्य इति । गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय घ्राणग्राह्य इति । पृथिवीति । पृथिवीसंबन्धसत्त्वे गन्धप्रतीतिसत्त्वं पृथिवीसंबन्धाभावे गन्धप्रतीत्यभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव जले प्रतीतिर्बोध्या । एवं वायावपि । ननु देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसंबद्धपवनस्यैतद्देशे तत्संबन्धाभावाद्गन्धप्रतीत्यनुपपत्तिः । नच वाय्वानीतत्र्यणुकादिसंबन्धोऽस्त्वेवेति वाच्यं, कस्तूर्या न्यूनतापत्तेः, कुसुमस्य च सच्छिद्रत्वापत्तेरिति चेन्न । भोगादृष्टविशेषेण पूर्ववत्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तेः । कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथात्वमिति ॥

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः । स च त्रिविधः । शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात् । पृथिव्यप्तेजो वायुवृत्तिः । तत्र शीतो जले । उष्णस्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः ॥

(न्या०) स्पर्शं लक्षयति—त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्य इति । अत्रापि मात्रपदं संख्यादिसामान्यगुणादावतिव्याप्तिवारणाय । अन्यविशेषणकृत्यं पूर्ववद्बोध्यम् । ग्राह्यत्वपदार्थोऽपि पूर्ववदेव प्रत्यक्षविषयस्वरूप एव बोध्यः ॥

(प०) स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय त्वगिन्द्रियेति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । तत्रेति । पृथिव्यादिचतुष्टये शीत इति शीतस्पर्शः । उष्ण इति उष्णस्पर्शः ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् ॥

(न्या०) रूपादिचतुष्टयमिति । एतत्तत्त्वनिर्णयश्चेत्थम् । पाको नाम विजातीयतेजःसंयोगः । स च नानाजातीयरूपजनको विजातीयस्तेजःसंयोगः । तदपेक्षया रसजनको विजातीयः । एवं गन्धजनकोऽपि ततो विजातीय एव । एवं स्पर्शजनकोऽपि तथैव । एवंप्रकारेण भिन्नभिन्नजातीयाः पाकाः कार्यवैलक्षण्येन कल्पनीयाः । यथा तृणपुञ्जनिक्षिप्त आम्रादौ ऊष्मलक्षणविजातीयतेजःसंयोगात्पूर्वहरितरूपनाशेन रूपान्तरस्य पीतादेरुत्पत्तिर्न तु रसादेरुत्पत्तिः । पूर्वरसस्याम्लस्यैवानुभवात् । क्वचित्पूर्वहरितरूपसत्त्वेऽपि रसपरावृत्तिर्दृश्यते । विजातीयतेजःसंयोगरूपपाकवशात्पूर्वतनाम्लरसनाशेन मधुररसस्यानुभवात् । तस्माद्रूपजनकापेक्षया रसजनको विलक्षण एवाग्नि-

कार्यः । एवं गन्धजनको विलक्षण एव । रूपरसयोरपरावृत्तावपि पूर्वगन्धनाशेऽपि विजातीयपाकवशात्सुरभिगन्धोपलब्धेः । एवं स्पर्शजनको पाकवशात्कठिनस्पर्शनाशेन मृदुस्पर्शानुभवात् । तस्माद्रूपादिजनका विजातीया एव पाकाः । अत एव पार्थिवपरमाणूनामेकजातीयत्वेऽपि पाकमहिम्ना विजातीयद्रव्यान्तरानुभवः । यथा गोभुक्ततृणादीनामापरमाण्वन्तभङ्गे तृणारम्भकपरमाणुषु विजातीयतेज:संयोगात्पूर्वरूपादिचतुष्टयनाशे तदनन्तरं दुग्धे यादृशं रूपादिकं वर्तते तादृशरूपरसगन्धस्पर्शजनकास्तेजःसंयोगा जायन्ते । तदुत्तरं तादृशरूपरसादय उत्पद्यन्ते । तादृशरूपरसादिविशिष्टपरमाणुभिर्दुग्धद्व्यणुकमारभ्यते । ततस्त्र्यणुकादिक्रमेण महादुग्धारम्भः । एवं दुग्धारम्भकैः परमाणुभिरेव दध्यारभ्यते । एवं पाकमहिम्ना दध्यारम्भकैरेव परमाणुभिर्नवनीतादिकमिति दिक् ॥

**एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या । सा नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता । एकत्वं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव ॥**

(५०) एकत्वादीति । एकमित्यादिर्यो व्यवहारः । एको द्वावित्याद्यात्मकस्तस्य हेतुः संख्या इत्यर्थः । घटादिवारणाय एकत्वादीति । कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम् । ननु संख्याया अवधिरस्ति न वेत्यत आह—एकत्वादीति तथाच 'एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्' ॥ इति महदुक्तेः परार्धपर्यन्तैव संख्या इति भावः ॥

**मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणम् । नवद्रव्यवृत्ति । तच्चतुर्विधम् । अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति ॥**

(५०) मानेति । मानं परिमितिस्तस्या यो व्यवहारः इदं महदिदमणु इत्याद्यात्मकः तस्य कारणं परिमाणमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय मानेति । कालादिवारणायासाधारणेति । शब्दत्ववारणाय कारणमिति । नवद्रव्येति । चतुर्विधमपि परमध्यमभेदेन द्विविधम् । तत्र परमाणुत्वं परमाणुमनसोः । मध्यमाणुत्वं द्व्यणुके । परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ । मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ । एतन्मते स्फटिकादिदं मौक्तिकमणुमिति व्यवहारस्यापकृष्टमहत्त्वाश्रयत्वाद्गौणत्वं बोध्यम् । एवमेव केतनाद्यश्वनं ह्रस्वमित्यत्रापि निकृष्टदीर्घत्वाद्गौणत्वम् ॥

**पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्ति ॥**

(प०) पृथगिति । अयमस्मात्पृथगिति यो व्यवहारस्तस्य कारणं पृथक्त्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय पृथगित्यादि । कालादिवारणायासाधारणेति । पृथग्व्यवहारत्ववारणाय कारणमिति ॥

**संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥**

(प०) संयुक्तेति । इमौ संयुक्ताविति यो व्यवहारस्तस्य हेतुः संयोग इत्यर्थः । दण्डादिवारणाय संयुक्तव्यवहारेति । कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम् । संयुक्तव्यवहारत्वेऽतिप्रसक्तिवारणाय हेतुरिति । उपदर्शितलक्षणचतुष्टयेऽसाधारणपदं देयम् । क्वचित्पुस्तके परिमाणपृथक्त्वलक्षणे ईश्वरेच्छादिवारणायासाधारणेति दृश्यते तत्त्वाधुनिकैर्न्यस्तमिति बोध्यम् ॥

**संयोगनाशको गुणो विभागः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥**

(न्या०) विभागं लक्षयति—**संयोगेति** । संयोगनाशकत्वविशिष्टगुणत्वं विभागस्य लक्षणम् । विशेषणमात्रोपादाने क्रियाया अपि संयोगनाशकत्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय गुणत्वमिति विशेष्योपादानम् ॥

(प०) संयोगेति । संयोगनाशजनक इत्यर्थः । कालेऽतिप्रसक्तिवारणाय गुणपदम् । ईश्वरेच्छादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम् । ननु असाधारणपदोपादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यादिति चेत् । न । क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय तस्याप्यावश्यकत्वात् ॥

**परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे । पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिनी । ते च द्विविधे । दिक्कृते कालकृते चेति । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम् । समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वं कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम् ॥**

(प०) परेति । परव्यवहारासाधारणं कारणं परत्वम् । अपरव्यवहारासाधारणं कारणमपरत्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय परव्यवहारेति । कालादिवारणायासाधारणेति । परव्यवहारत्ववारणाय कारणेति । एवमेव द्वितीयेऽपि बोध्यम् ॥

**आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वं पृथिवीजलवृत्ति ॥**

(न्या०) गुरुत्वं लक्षयति—**आद्येति** । द्वितीयपतनक्रियायां वेगस्यासमवायिकारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायाद्येति । उत्तरत्र स्यन्दने आद्यविशेषणमपि पूर्ववदेव योजनीयम् ॥

(प०) आद्येति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रूपादिवारणाय पतनेति । वेगेऽतिव्याप्तिवारणायाद्येति ॥

**आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्ति । तद्द्विविधम् । सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ॥**

(प०) आद्यस्यन्दनेति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रसादिवारणाय स्यन्दनेति ॥

**चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ॥**

(न्या०) स्नेहं लक्षयति—**चूर्णादीति** । चूर्णादिपिण्डीभावहेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेहस्य लक्षणम् । पिण्डीभावो नाम चूर्णादेर्धारणाकर्षणहेतुभूतो विलक्षणः संयोगः । तादृशसंयोगे स्नेहस्यैवासाधारणकारणत्वं न तु जलादिगतद्रवत्वस्य । तथा सति द्रुतसुवर्णादिसंयोगेन चूर्णादेः पिण्डीभावापत्तेः । अतः स्नेह एवासाधारणं कारणम् । विशेषणमात्रोपादाने कालादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । वस्तुतस्तु द्रुतजलसंयोगस्यैव पिण्डीभावहेतुत्वं स्नेहस्य पिण्डीभावहेतुत्वे मानाभावात् । जले द्रुतत्वविशेषणात्करकादिव्यावृत्तिः ॥

(प०) चूर्णादीति । चूर्णं पिष्टं तद्यादिर्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिस्तस्य पिण्डीभावः संयोगविशेषस्तस्य हेतुर्निमित्तकारणं स्नेह इत्यर्थः । कालादावतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति । चूर्णपदं स्पष्टार्थम् ॥

**श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः । आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधः । ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च । तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥**

(न्या०) शब्दं लक्षयति—**श्रोत्रेति** । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय श्रोत्रेति । स त्रिविधः संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति । यथा भेरीदण्डसंयोगजो भांकारादिशब्दः, हस्ताभिघातसंयोगजन्यो मृदङ्गादिशब्दः । वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजश्चटचटाशब्दः । शब्दोत्पत्तिदेशमारभ्य श्रोत्रदेशपर्यन्तं वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्बमुकुलन्यायेन वा निमित्तपवनेन शब्दधारा जायन्ते । तत्र उत्तरोत्तरशब्दे पूर्वपूर्वशब्दः कारणम् ॥

(प०) श्रोत्रेति। शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादिवारणाय श्रोत्रग्राह्य इति। वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन तद्भिन्नेऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद्गुणपदमनुपादेयमेव॥

**सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्। सा द्विविधा। स्मृतिरनुभवश्च॥**

(न्या०) बुद्धेर्लक्षणमाह—**सर्वव्यवहारेति**। व्यवहारः शब्दप्रयोगः। ज्ञानं विना शब्दप्रयोगासंभवाच्छब्दप्रयोगरूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य लक्षणम्। बुद्धिं विभजते—**सा द्विविधेति**।

(प०) बुद्धिलक्षणमाह—सर्वेति। सर्वे ये व्यवहारा आहारविहारादयस्तेषां हेतुर्बुद्धिरित्यर्थः। दण्डादिवारणाय सर्वव्यवहारेति। कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम्।

**संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः॥**

(न्या०) स्मृतिं लक्षयति—**संस्कारेति**। संस्कारजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वं स्मृतेर्लक्षणम्। विशेषणानुपादाने प्रत्यक्षानुभवेऽतिव्याप्तिस्तद्वारणाय विशेषणोपादानम्। संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्योपादानम्। ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वात् संस्कारध्वंसेऽपि संस्कारजन्यत्वस्य सत्त्वात्। प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्॥

(प०) **संस्कारेति**। संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारजन्यमिति। तथापि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यत्वं विवक्षणीयम्। क्वचित्तथैव पाठः। नन्वेवं सत्यसंभवस्तस्य संस्कारजन्यत्वे सतीन्द्रियार्थसंनिकर्षाजन्यार्थकत्वात्॥

**तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधः। यथार्थोऽयथार्थश्च॥**

(न्या०) अनुभवं लक्षयति—**तद्भिन्नमिति**। तद्भिन्नत्वं नाम स्मृतिभिन्नत्वम्। स्मृतिभिन्नत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुभवस्य लक्षणम्। तत्र विशेषणानुपादाने स्मृतावतिव्याप्तिः, विशेष्यानुपादाने घटादा-

---

१ बुद्धिर्ज्ञानमिति पर्यायोपादानं ज्ञानबुद्ध्युपलब्धिशब्दानामभिन्नार्थत्वे समानार्थत्वं न सांख्यानामिव भिन्नार्थकत्वमिति ज्ञापयितुम्। २ अत्र प्रतियोगित्वसंबन्धेन ध्वंसं प्रति तादात्म्यसंबन्धेन प्रतियोगिनः कारणत्वमिति कार्यकारणभावो बोध्यः।

३ पुरोवर्तिनि पूर्वदृष्टत्वाभेदावगाहिज्ञानं प्रत्यभिज्ञा। यथा 'सोऽयं देवदत्तः' इति ज्ञानम्। इदं च संस्कारेन्द्रियसंनिकर्षाभ्यां जन्यते। तत्र तदंशे संस्कारः, इदमंशे इन्द्रियसंनिकर्षो हेतुः। अतः [illegible] ज्ञानमित्यपि लक्षणं बोध्यम्।

वतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेषणविशेष्ययोरुभयोरुपादानम् । अनुभवं विभजते—**स द्विविध इति ॥**

(प०) तदिति । स्मृतित्वावच्छिन्नभिन्नमित्यर्थः । तेन यत्किञ्चित्स्मृतिभिन्नस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः । घटादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति । स्मृतिवारणाय तद्भिन्नमिति ॥

**तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः । सैव प्रमेत्युच्यते ।**

(न्या०) यथार्थानुभवं लक्षयति—तद्वतीति । तद्वतीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम् । तच्छब्देन प्रकारीभूतो धर्मो धर्तव्यः । तथा च तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकानुभवत्वं यथार्थानुभवस्य लक्षणम् । उदाहरणम्—रजते 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम् । अत्र रजतत्ववद्विशेष्यकत्वे सति रजतत्वप्रकारकत्वस्य सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः । तन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वमिति तु निष्कर्षः । अन्यथा यथाश्रुते रङ्गरजतयोरिमे रजतरङ्गे इत्याकारकसमूहालम्बनभ्रमेऽतिव्याप्तिः, तत्रापि रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्ववद्विशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोः सत्त्वात् । उक्तनिष्कर्षे तु नातिव्याप्तिः, रजतत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात् । किं, समूहालम्बनभ्रमस्य रङ्गांशे रजतत्वावगाहित्वेन रजतत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वात् । एवं रजतांशे रङ्गत्वावगाहित्वे रङ्गत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाच्चेति । नानामुख्यविशेष्यताशालि ज्ञानं समूहालम्बनम् ॥

(प०) तद्वतीति । तद्वति तत्प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थः । तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारक इति यावत् । स्मृतिवारणायानुभव इति । अयथार्थानुभववारणाय तद्वतीति । निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्प्रकारक इति ॥

**तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः ॥**

---

१ अत्र 'विशेष्यत्वस्य निरूपकत्वसंबन्धेन अनुभवेऽन्वयः' इति शेषः । २ ...निष्ठविशेष्यतानिरूपकत्वे सति तन्निष्ठप्रकारतानिरूपकत्वे सत्यनुभवत्वम् । ३ शालित्वमत्र निरूपकत्वम् । ४ अन्यथा=लक्षणघटकविशेष्यत्वप्रकारत्वयोर्निरूप्यनिरूपकभावस्याविवक्षायाम् । ५ विशेष्यत्वस्य साक्षादनुभवविशेषणत्वे । ६ ...स्यर्थविशेष्यत्वस्य प्रकारताद्वारानुभवविशेषणत्वरूपनिष्कर्षे ।

(न्या०) अयथार्थानुभवं लक्षयति—**तदभाववतीति** । अत्रापि पूर्ववत्तदभाववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालिज्ञानत्वं विवक्षणीयम् । अन्यथा रङ्गरजतयोरिमे रङ्गरजते इत्याकारसमूहालम्बनप्रमायामतिव्याप्तिः । एतत्समूहालम्बनस्य रङ्गरजतोभयविशेष्यकत्वेन रजतत्वरङ्गत्वोभयप्रकारकत्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोश्च सत्त्वात् । निष्कर्षे तु रजतांशे रजतत्वावगाहित्वेन रङ्गांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वप्रकारताया रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यतानिरूपितत्वाभावात् । एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यतानिरूपितत्वाभावाच्चातिव्याप्तिः । उदाहरणम्—यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ॥

(प०) **तदभावेति** । तदभाववद्विशेष्यकतत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थानुभव इत्यर्थः । यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम् । स्मृतिवारणायानुभव इति । यथार्थानुभवेऽतिव्याप्तिनिरसनाय तदभाववतीति । निर्विकल्पकवारणाय तत्प्रकारक इति ॥

**यथार्थानुभवश्चतुर्विधः । प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात् ॥**

(न्या०) यथार्थानुभवं विभजते—**चतुर्विध इति** ॥

(प०) **यथार्थेति** । यथार्थानुभवः प्रत्यक्षमेवेति चार्वाकाः । अनुमितिरपीति काणादबौद्धाः । उपमितिरपीति नैयायिकैकदेशिनः । शाब्दमपीति नैयायिकाः । अर्थापत्तिरपीति प्राभाकराः । आनुपलब्धिकोऽपीति भाट्टवेदान्तिनौ । सांभविकैतिह्यकावपीति पौराणिकाः । चैष्टिकोऽपीति तान्त्रिकाः । एतेषां मतेऽन्तरसं संभाव्य तस्य चातुर्विध्यं दर्शितम् ॥

**तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥**

(न्या०) **तत्करणमिति** । फलीभूतप्रत्यक्षादिकरणं चतुर्विधमित्यर्थः । प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमाणानां प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम् । एकैकप्रमाणलक्षणं तु वक्ष्यते प्रत्यक्षज्ञानेत्यादिना ॥

(प०) **तदिति** । यथार्थानुभवात्मकप्रमायाः करणमित्यर्थः ॥

**असाधारणं कारणं करणम् ॥**

(न्या०) करणलक्षणमाह—**असाधारणमिति** । व्यापारवदसाधारणं कारणं करणमित्यर्थः । असाधारणत्वं च कार्यत्वातिरिक्त-

धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । यथा दण्डादेर्घटादिकं प्रत्यसाधारणकारणत्वम् । कार्यत्वातिरिक्तो घटत्वादिरूपो धर्मः तदवच्छिन्नकार्यता घटे । तन्निरूपितकारणता दण्डे । अतो घटं प्रति दण्डः असाधारणं कारणम् । भ्रम्यादिरूपव्यापारवत्त्वाच्च करणम् । साधारणत्वं च कार्यत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । ईश्वरादृष्टादेः कार्यत्वावच्छिन्नं प्रत्येव कारणत्वात्साधारणकारणत्वम्॥

(प० ) असाधारणमिति । कालादिवारणायासाधारणमिति । व्यापारेऽतिव्याप्तिवारणाय व्यापारवदित्यपि देयम् । व्यापारश्च द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः । ईश्वरेच्छादिवारणाय तज्जन्यत्वे सतीति । कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्याप्यस्त्यतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम् । दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्यजनक इति ॥

कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् ॥

(न्या०) कारणं लक्षयति—कार्यनियतेति । कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वम् । नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यादतो नियतत्वे सतीति विशेषणम् । नियतपूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यादतोऽनन्यथासिद्धपदमपि कारणलक्षणे निवेशनीयम् । दण्डरूपादीनां त्वन्यथासिद्धत्वात्॥

(प०) कार्येति । कार्यान्नियतावश्यंभाविनी पूर्ववृत्तिः पूर्वक्षणवृत्तिर्यस्य तत्तथेत्यर्थः । अनियतरासभादिवारणाय नियतेति । कार्यवारणाय पूर्वेति । दण्डत्वादिवारणायानन्यथासिद्धत्वविशेषणस्यावश्यकत्वेन तत एव रासभादिवारणसंभवे नियतपदमनर्थकमेव । एवंचानन्यथासिद्धकार्यपूर्ववृत्ति कारणमिति फलितम् । अनन्यथासिद्धत्वमन्यथासिद्धिशून्यत्वम् । अन्यथासिद्धिश्चावश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसंभवे तत्सहभूतत्वम् । यथावश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूपकार्यसंभवे तत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ तदन्यथासिद्धम् ॥

कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥

(न्या०) कार्यं लक्षयति—कार्यमिति । प्रागभावप्रतियोगित्वं कार्यस्य लक्षणम् । कार्योत्पत्तेः पूर्वम् 'इह घटो भविष्यति' इति

---

१ नियतत्वं व्यापकत्वम् । [illegible] कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छिन्नो [illegible] [illegible] पूर्ववृत्तीनि । [illegible] दण्डादौ [illegible] न क्षतिः ।

प्रतीतिर्जायते एतत्प्रतीतिविषयीभूतो योऽभावः स प्रागभावः तत्प्रतियोगि घटादिरूपं कार्यम् ॥

(प० ) प्रागभावेति । कालादिवारणाय प्रागिति । असंभववारणाय प्रतियोगीति ।

**कारणं त्रिविधं समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् ॥**

(न्या०) कारणं विभजते—**कारणमिति** । समवायिकारणमसमवायिकारणं निमित्तकारणं चेति ॥

**यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य । पटश्च स्वगतरूपादेः ॥**

(न्या०) समवायिकारणं लक्षयति—**यत्समवेतमिति** । यस्मिन्समवेतं सत्समवायेन संबद्धं सत् कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणमित्यर्थः । उदाहरणम्—**यथा तन्तव इति** । तन्तुषु समवायेन संबद्धं सत्पटात्मकं कार्यमुत्पद्यते तत् तन्तवः समवायिकारणमित्यर्थः । सामान्यलक्षणं तु–समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वमिति । समवायसंबन्धेन घटाधिकरणे कपालादौ कपालादेः तादात्म्यसंबन्धेनैव सत्त्वात्, समवायसंबन्धावच्छिन्न-घटत्वावच्छिन्न-कार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः । जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसंबन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वाज्जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु द्रव्यमेव समवायिकारणम् । द्रव्ये तु द्रव्यावयवाः समवायिकारणम् । अतो गुणादावपि द्रव्यमेव समवायिकारणमित्याशयेनाह—**पटश्च स्वगतरूपादेरिति** । समवायिकारणमित्यनुषज्यते ॥

(प० ) यदिति । यस्मिन्समवायसंबन्धेन वर्तमानं तदित्यर्थः । चक्रादिवारणाय समवेतमिति ॥

**कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणमसमवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य । तन्तुरूपं पटरूपस्य ॥**

---

१ उत्पद्यत इति सत्कार्यवादिसांख्यनिरासाय । स हि सत एव कार्यस्य व्यापारैरभिव्यक्तिं मन्यते ।

(न्या०) असमवायिकारणं लक्षयति—कार्येणेति । कार्येण सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तत् असमवायिकारणमित्यन्वयः । कारणेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तदसमवायिकारणमित्यन्वयः । अत्र कारणेनेत्यस्य स्वकार्यसमवायिकारणेनेत्यर्थः । जन्यद्रव्यमात्रे अवयवसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वात्पटात्मककार्ये तदवयवतन्तुसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वमिति दर्शयति—यथा तन्तुसंयोगः पटस्येति । पटात्मककार्येण सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत्पटात्मककार्यं प्रति तन्तुसंयोगात्मकं कारणमसमवायिकारणमित्यर्थः । द्वितीयमसमवायिकारणं कारणेन सहेत्यादिना पूर्वोक्तं तदुदाहरति—तन्तुरूपमिति । कारणेन सह पटरूपसमवायिकारणीभूतपटेन सह एकस्मिन्नर्थे तन्तुरूपेऽर्थे समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत् तन्तुरूपं पटगतरूपं प्रति कारणं भवति, अतोऽसमवायिकारणं तन्तुरूपं पटगतरूपस्य । सामान्यलक्षणं तु समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता या समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसंबन्धावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयत्वमसमवायिकारणत्वमिति । द्रव्यासमवायिकारणीभूतावयवसंयोगादौ तु समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता समवायसंबन्धावच्छिन्ना कपालद्वयसंयोगनिष्ठा कारणता कपालद्वयसंयोगे वर्तते । एवमाद्यपतनक्रियायामाद्यस्यन्दनक्रियायां च गुरुत्वद्रवत्वे असमवायिकारणे भवतः । आद्यपतनक्रियां प्रति

---

१ कार्यकारणयोः सामानाधिकरण्यमपेक्षितं तच्च एकस्मिन्नधिकरणे वृत्तित्वं, तत्र येन संबन्धेन कार्यस्य येन च कारणस्य वृत्तित्वमपेक्षितं तावुभौ क्रमेण कार्यताकारणतावच्छेदकसंबन्धौ भवतः । द्विविधेऽपि असमवायिकारणे एकस्मिन्नधिकरणे कार्यस्य समवायेनैव वृत्तित्वमपेक्षितमिति उभयत्रापि समवायः कार्यतावच्छेदकसंबन्धः । कारणतावच्छेदकश्च प्रथमे समवायः, द्वितीये स्वसमवायिसमवेतत्वम् । स्वशब्देन असमवायिकारणतयाभिमतस्य तन्तुरूपादेर्ग्रहणं, तत्समवायि नाम समवायेनाश्रयः तन्त्वादिः, तत्र समवेतत्वं समवायेन वृत्तित्वं पटस्य इति पटात्मके एकस्मिन्नधिकरणे पटरूपात्मककार्यस्य समवायेन तन्तुरूपात्मककारणस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धेन वृत्तित्वात्स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धावच्छिन्ना कारणता तन्तुरूपे अस्तीति बोध्यम् ।

आद्यस्पन्दनक्रियां प्रति च समवायसंबन्धेनैव तयोः कारणत्वात् । अवयविगुणादौ स्वावयवगुणादेः स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धेनैव कारणत्वात्, तत्संबन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वमवयवगुणादौ वर्तते । अवयवगुणकपालतन्तुरूपादेः स्वशब्दग्राह्यकपालरूपतन्तुरूपसमवायिकपालतन्तुसमवेतत्वसंबन्धेन घटपटादौ सत्त्वात् ॥

(प० ) कार्येणेति । कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति यत् कारणं तदसमवायिकारणम् । तन्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय कार्येणेति । तन्तुरूपादावव्याप्तिवारणाय कारणेनेति आत्मविशेषगुणेऽतिव्याप्तिवारणायात्मविशेषगुणभिन्नत्वे सतीति । विशेष्यवारणाय कारणमिति ॥

**तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा तुरीवेमादिकं पटस्य ॥**

(न्या० ) निमित्तकारणं लक्षयति—तदुभयभिन्नमिति । समवायिकारणभिन्नत्वे सति असमवायिकारणभिन्नत्वे सति कारणत्वं निमित्तकारणत्वमित्यर्थः ॥

(प० ) तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणमिति । समवाय्यसमवायिकारणवारणाय तदुभयभिन्नमिति । विशेषादावतिव्याप्तिवारणाय कारणमिति ॥

**तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् ॥**

(न्या०) तदेतदिति । यदसाधारणमिति । व्यापारवत्त्वे सतीत्यपि पूरणीयम् । अन्यथा तन्तुकपालसंयोगयोरतिव्याप्तिः । तन्तुकपालसंयोगयोरपि कार्यत्वातिरिक्तपटत्वघटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वादसाधारणत्वमस्त्येवेत्यतस्तत्र करणत्ववारणाय व्यापारवत्त्वे सतीति करणलक्षणे विशेषणं देयम् । व्यापारत्वं च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् । भवति हि दण्डजन्यत्वे सति दण्डजन्यघटजनकत्वाद्भ्रम्यादेर्दण्डव्यापारत्वम् । एवं कपालसंयोगतन्तुसंयोगादेरपि कपालतन्तुव्यापारत्वं कपालतन्तुजन्यत्वे सति कपालतन्तुजन्यघटपटजनकत्वात् । करणलक्षणेऽसाधारणत्वविशेषणानुपादाने ईश्वरादृष्टादेरपि व्यापारवत्कारणत्वस्य सत्त्वात्, तत्रातिव्याप्तिवारणायासाधारणेति विशेषणम् ॥

( प० ) तदेतदिति । यस्मात्कारणात्करणलघटकं कारणमुपदर्शितं तस्मादेतत्रिविधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव करणमिति भावः ॥ इति करणप्रपञ्चः ॥

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ॥

(न्या०) षड्विधेन्द्रियभूतप्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणमाह—तत्रेति। प्रमाभूतेषु प्रत्यक्षात्मकं यज्ज्ञानं चाक्षुषादिप्रत्यक्षं तत्प्रति व्यापारवद् साधारणं कारणमिन्द्रियं भवति । अतः प्रत्यक्षज्ञानकरणत्वं प्रत्यक्षलक्षणम् । आद्यसंनिकर्षातिरिक्तचतुर्विधसंनिकर्षाणां समवायरूपत्वेनेन्द्रियजन्यत्वाभावाद्व्यापारत्वं न संभवतीति इन्द्रियमनःसंयोगस्यैव बाह्यप्रत्यक्षे जननीये इन्द्रियव्यापारता बोध्या । मानसप्रत्यक्षे त्वात्ममनःसंयोगस्यैव सा बोध्या ॥

( प० ) तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्ये । दण्डादिवारणाय ज्ञानेति । अनुमानादिवारणाय प्रत्यक्षेति ॥

[ ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ] इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तद्द्विविधम् । निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति ॥

(न्या०) प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमुक्त्वा प्रत्यक्षप्रमालक्षणमाह—[ज्ञानाकरणकमिति । क्षेपकं लक्षणमिदम् । ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सादृश्यज्ञानं पदज्ञानं च करणं येषां ते ज्ञानकरणका अनुमित्युपमितिशाब्दाः ज्ञानकरणकं न भवतीति ज्ञानाकरणकम् । तत्त्वं प्रत्यक्षलक्षणम् । इदं लक्षणमीश्वरप्रत्यक्षसाधारणम् । ईश्वरप्रत्यक्षस्याजन्यत्वात्, जन्यप्रत्यक्षे च इन्द्रियाणामेव करणत्वं न तु ज्ञानस्येति तयोरुभयसंग्रहः ।] इन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वमित्यभिप्रायेणेदं लक्षणम् । प्रत्यक्षं विभजते—निर्विकल्पकमिति ।

( प० ) इन्द्रियार्थेति । इन्द्रियं चक्षुरादिकमर्थो घटादिस्तयोः संनिकर्षः संयोगादिस्तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षमित्यर्थः । संनिकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति । अनुमित्यादिवारणायेन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । ननु लोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणं उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन सह संनिकर्षाभावात् । कथं वा स्वच्छजलान्तर्गतलावृतमत्स्यादेश्चक्षुषा ग्रहणमिति चेन्न । स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाभावात्तदन्तश्चक्षुःप्रवेशसंभवात् । न चेश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति वाच्यम् । अत्र जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्षितत्वात् ॥

**तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् ॥**

( न्या० ) तल्लक्षयति—**तत्र निष्प्रकारकमिति** । प्रकारताशून्यज्ञानत्वमेव निर्विकल्पकत्वमित्यर्थः । निर्विकल्पके चतुर्थी विषयता स्वीक्रियते । न तु त्रिविधविषयतामध्ये कापि तत्रास्ति । अतो विशेष्यताशून्यज्ञानत्वं संसर्गताशून्यज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं संभवति ॥

( प० ) **तत्र निष्प्रकारकमिति** । सविकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय निष्प्रकारकमिति । प्रकारवारणाय ज्ञानमिति ॥

**सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति ॥**

( न्या० ) सविकल्पकं लक्षयति—**सप्रकारकमिति** । विषयताया ज्ञाननिरूपितत्वाज्ज्ञानस्य विषयतानिरूपकत्वेन प्रकारतानिरूपकज्ञानत्वं सविकल्पकस्य लक्षणम् । एवं विशेष्यतानिरूपकज्ञानत्वं संसर्गतानिरूपकज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं संभवति । उदाहरणम् —**यथेति** । इदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितडित्थत्वप्रकारताशालिज्ञानं ब्राह्मणत्वप्रकारताशालिज्ञानं च सविकल्पकमित्यर्थः ।

( प० ) **सप्रकारकमिति** । घटादिवारणाय ज्ञानमिति । निर्विकल्पकवारणाय सप्रकारकमिति ॥

**प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसंनिकर्षः षड्विधः । संयोगः संयुक्तसमवायः संयुक्तसमवेतसमवायः समवायः समवेतसमवायो विशेषणविशेष्यभावश्चेति ॥**

(न्या०) चाक्षुषादिषड्विधप्रत्यक्षकारणीभूतान् षड्विधसंनिकर्षान्विभजते—**संयोग इत्यादिना** । द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयोगः कारणम् । द्रव्यसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यग्राहकाणीन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ्मनांसि त्रीण्येव । अन्यानि घ्राणरसनश्रवणानि गुणग्राहकाणि । अतस्त्वगिन्द्रियसत्त्वे द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन त्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयोगस्य हेतुता ।

एवं द्रव्यसमवेतत्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तसमवायस्य हेतुता । द्रव्यसमवेतसमवेतोष्णत्वशीतत्वादिजातिस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । एवमात्ममानसप्रत्यक्षे मनःसंयोगस्य हेतुता । आत्मसमवेतसुखादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवायस्य हेतुता । आत्मसमवेतसमवेतसुखत्वादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । रसनघ्राणयोस्तु रसगन्धतद्गतजातिग्राहकत्वेन द्वितीयतृतीययोः संनिकर्षयोरेव तत्र हेतुता वाच्या । श्रवणेन्द्रियस्याकाशरूपत्वेन शब्दस्याकाशगुणत्वेन श्रवणेन्द्रियेण समं शब्दस्य समवायः संनिकर्षः । शब्दवृत्तिशब्दत्वकत्वखत्वादिजातिविषयकश्रावणप्रत्यक्षे समवेतसमवायस्य हेतुता । अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावो नाम विशेषणतासंनिकर्षः पञ्चविधसंनिकर्षोपरि विशेषणता योजनीया । तथाहि—द्रव्याधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तविशेषणता । द्रव्यसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणता । संयोगस्थाने संयुक्तपदं घटयित्वा समवायस्थाने समवेतपदं घटयित्वा अभावप्रत्यक्षस्थले निर्वाह्यम् । तथा घटद्रव्यसमवेतं घटत्वं पृथ्वीत्वादिकं रूपादिकं च । तत्र नीलादौ पीतत्वाभावः घटत्वादिजातौ पटत्वाभावश्च वर्तते स चाभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते । एवं नीलत्वादिजातौ पीतत्वाभावोऽपीन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतत्वेनविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते घटसमवेतं नीलं तत्समवेतं नीलत्वं तद्विशेषणता पीतत्वाभावे वर्तत इति संक्षेपः ॥ इति प्रत्यक्षपरिच्छेदः ॥

( प० ) प्रत्यक्षेति । तच प्रत्यक्षं षड्विधं घ्राणजरासनचाक्षुषश्रौत्रत्वाचमानसभेदात् । ननु प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियनिष्ठप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः संनिकर्षः क इत्यपेक्षायां तं विभज्य दर्शयति—प्रत्यक्षेति । लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः संनिकर्षः ॥

( प० ) संयोगमुदाहरति—चक्षुषेति । तथाच द्रव्यचाक्षुषप्रत्यक्षजनने संयोग एव संनिकर्ष इति भावः ॥

**घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः संनिकर्षः । चक्षुः-संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् ॥**

( प० ) घटरूपेति । चक्षुषा इत्यनुपज्यते । तथा च द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वा-स्मानसरासनघ्राणजेषु संयुक्तसमवाय एव संनिकर्ष इत्यर्थः ॥

**रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् ॥**

रूपत्वेति । रूपत्वात्मकं यत्सामान्यं तत्प्रत्यक्ष इत्यर्थः । अत्रापि चक्षुषा इत्यनुपज्यते । तथा च द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषरासनघ्राणजस्पार्शनमान-सेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्ष इति भावः । अथ द्रव्यसमवेतसमवेतप्रत्य-क्षेऽपि संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्षोऽस्त्विति चेन्नैतत् । ईश्वरात्मादे(आत्म-सुखादे?) रनध्यक्षत्वप्रसङ्गात् ॥

**श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः संनिकर्षः। कर्णविवरव-र्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वात् गुणगुणि-नोश्च समवायात् ॥ शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः संनिकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ॥**

( प० ) समवायसंनिकर्षमुदाहरति—श्रोत्रेणेति । जननीय इति शेषः । ननु श्रोत्रशब्दयोः कथं समवाय इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य दर्शयति—कर्-णेति । अथ समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापार इति चेत् शब्दः, श्रोत्रमनःसंयोगो वेति गृहाण । शब्दत्वेति । श्रोत्रेण जननीये इत्यनुकर्षणीयं ॥

**घटाभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः संनिकर्षः । घटा-भाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात् ॥**

( प० ) विशेषणेति । विशेषणभावो विशेष्यभावश्चेति बोध्यम् । इन्द्रिय-संबद्धविशेषणत्वमिन्द्रियसंबद्धविशेष्यत्वमिति यावत् । विशेषणतासंनिकर्षमुप-पाद्य दर्शयति-घटाभाववदिति । इह भूतले घटो नास्तीत्यादौ विशेष्यतासं-निकर्षोऽवसेयः । तत्सम्बन्धस्य विशेषणत्वात् ॥

**एवं संनिकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं तत्करणमिन्द्रियं, तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम् ॥**

( प० ) प्रत्यक्षप्रमामुपसंहरति—एवमिति । उपदर्शितक्रमेणेत्यर्थः । ननु सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणमिन्द्रियार्थसंनिकर्षः किं न स्यादिति चेत्तत्राह— ...करणमिति । प्रत्यक्षप्रमाणं निगमयति—तस्मादिति । प्रत्यक्षप्रमाकरण- ...त्यर्थः । सिद्धमिति । न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः ॥

इति पदकृत्ये प्रत्यक्षपरिच्छेदः ॥

---

## अनुमानपरिच्छेदः ।

**अनुमितिकरणमनुमानम् ।**

(न्या०) अनुमानं लक्षयति—**अनुमितीति** । अनुमितौ व्या-
प्तिज्ञानं करणं, परामर्शो व्यापारः, अनुमितिः फलं, कार्यमित्यर्थः ।
परामर्शस्य व्याप्तिज्ञानजन्यत्वाद्व्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिजनकत्वात्तज्जन्य-
त्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपव्यापारत्वमुपपन्नम् । अनुमितिकरणत्व-
मनुमानस्य लक्षणम् । अनुमानं व्याप्तिज्ञानम् । एतस्य परामर्शरूपव्या-
पारद्वारा अनुमितिं प्रत्यसाधारणकारणतयानुमितिकरणत्वमुपपन्नम् ॥

(प०) प्रत्यक्षानुमानयोः कार्यकारणभावसङ्गतिमभिप्रेत्य प्रत्यक्षानन्तरमनु-
मानं निरूपयति—**अनुमितीति** । अनुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः । तच्च
लिङ्गपरामर्श एवेति निवेदयिष्यते । कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय अनुमितीति ।
प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय अन्विति ॥

**परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ।**

(न्या०) **परामर्शजन्यमिति** । परामर्शजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्व-
मनुमितेर्लक्षणम् । अत्र ज्ञानत्वमात्रोपादाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः
अतस्तद्वारणाय परामर्शजन्यत्वे सतीति विशेषणोपादानम् । परामर्श-
जन्यत्वमात्रोक्तौ परामर्शध्वंसेऽतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय ज्ञानत्वोपादा-
नम् ॥

(प०) नन्वनुमितेरेव दुर्निरूपत्वात्तद्घटितानुमानमपि दुर्निरूपमित्यत आह—
**परामर्शेति** । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शजन्यमिति । परामर्शध्वंस-
वारणाय ज्ञानमिति । परामर्शप्रत्यक्षवारणाय हेत्वविषयकमित्यपि बोध्यम् ॥

**व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा वह्नि-
व्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः । तज्जन्यं
पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः ॥**

(न्या०) अनुमितिलक्षणघटकीभूतपरामर्शलक्षणमाचष्टे—**व्या-
प्तिविशिष्टेति** । व्याप्तिविशिष्टं च तत्पक्षधर्मताज्ञानं चेति कर्म-
धारये—विशिष्टपदस्य प्रकारतानिरूपकत्वात्, पक्षधर्मताज्ञानमि-
त्यत्र षष्ठ्या विषयत्वबोधनात्, धर्मतापदस्य संबन्धार्थकत्वाच्च, ...

१ व्याप्तिविशिष्टं यत्पक्षधर्मताज्ञानमिति कर्मधारये परामर्शत्वस्य व्या-
'धूमवान्पर्वतः' इत्यादिज्ञानसाधारण्यापत्तेराह—व्याप्तिविशिष्टमिति
धर्मतायाः ज्ञानमिति विग्रहवाक्यप्रदर्शनेऽयमर्थः ।

धारयसमासे समस्यमानपदार्थयोरभेदसंसर्गलाभेन च—व्याप्तिप्रकारकाभिन्नं यत्पक्षसंबन्धविषयकं ज्ञानं तत्परामर्श इति लभ्यते । एवं सति 'धूमोवह्निव्याप्यः आलोकवान्पर्वतः' इत्याकारकसमूहालम्बने परामर्शलक्षणमस्तीत्यतिव्याप्तिस्तद्वारणाय पक्षनिष्ठविशेष्यतानिरूपिता या हेतुनिष्ठा प्रकारता तन्निरूपिता या व्याप्तिनिष्ठा प्रकारता तच्छालि ज्ञानं परामर्श इति निष्कर्षः । एतादृशपरामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम् । अनुमितिपरामर्शयोर्विशिष्य कार्यकारणभावश्चेत्थम् ॥ पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपित–संयोगसंबन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्न–विधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्तिप्रकारतानिरूपिता या धूमत्वावच्छिन्नप्रकारता तन्निरूपिता पर्वतत्वावच्छिन्ना विशेष्यता तच्छालिनिर्णयः कारणम् ॥ स च निर्णयः वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वत इत्याकारको बोध्यः ॥

(प०) व्याप्तिविशिष्टेति । विषयितासंबन्धेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्श इत्यर्थः । घटादिज्ञानवारणाय पक्षधर्मतेति । धूमवान्पर्वत इत्यादिज्ञानवारणाय व्याप्तिविशिष्टेति । तदिति । परामर्शजन्यमित्यर्थः ।

**यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ॥**

(न्या०) यत्र यत्रेति । यत्रपदवीप्सावशाद्धूमाधिकरणे यावति वह्निमत्त्वलाभात्तत्पदमहिम्ना वह्नेर्धूमव्यापकत्वं लब्धम् ॥ तदेव स्पष्टयति—साहचर्यनियम इति । एतदर्थस्तु नियतसाहचर्यं व्याप्तिरिति । नियतत्वं व्यापकत्वम् ॥ साहचर्यं नाम सामानाधिकरण्यम् । तथाच धूमनियतवह्निसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यर्थः । अत्र वह्नेर्धूमव्यापकत्वं नाम धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वम् । यथाहि—धूमाधिकरणे पर्वतचत्व-

---

२ प्रकारत्वविशेष्यत्वयोः परस्परं निरूप्यनिरूपकभावोऽस्ति, ननु प्रकारतानिरूपिता प्रकारता भवति विशेष्यतानिरूपिता वा विशेष्यता; यथापि समानाधिकरणनिरूपणयोरेकत्वाभिमानेन हेतुनिष्ठप्रकारतानिरूपिता या व्याप्तिनिष्ठप्रकारतेत्युक्तम् । वस्तुतो हेतौ व्याप्तिनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतायाः पक्षनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारतायाश्च सत्त्वात्तयोः सामानाधिकरण्यनिमित्तकाभेदाध्यवसाये हेतुनिष्ठप्रकारतायामपि व्याप्तिनिरूपितविशेष्यतात्वाभिमानात् तस्यां च व्याप्तिनिष्ठप्रकारतानिरूपकत्वस्य सत्त्वात् हेतुनिष्ठप्रकारतानिरूपिता व्याप्तिनिष्ठप्रकारतेत्युक्तमिति भावः ।

रमहानसादौ वर्तमानो योऽभावः घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताका-
भावः न तु वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः । कुतः । पर्वतादौ
वह्नेः सत्त्वात् । एवं सति धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरादौ वर्तमानस्य
घटाद्यभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकं घटत्वादिकमनवच्छेदकं वह्नित्वं
वह्नौ वर्ततेऽतो धूमव्यापकत्वं वह्नौ वर्तते । इयमन्वयव्याप्तिः सिद्धा-
न्तानुसारेण । पूर्वपक्षव्याप्तिस्तु—साध्याभाववदवृत्तित्वम् । साध्य-
तावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवै-
यधिकरण्यावच्छिन्ना-भाववन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नवृ-
त्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति निष्कर्षः । तच्च केवला-
न्वयिन्यव्याप्तमिति सिद्धान्तानुसरणम् ॥

(प०) यत्रयत्रेति । यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तेरभिनयः । सा-
साहचर्यनियम इति लक्षणम् । सह चरतीति सहचरस्तस्य भावः साहचर्यं सा-
नाधिकरण्यमिति यावत् । तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः । स चाव्यभिचरितत्वं
तच्च व्यभिचाराभावः । व्यभिचारश्च साध्याभाववद्वृत्तित्वम् । तथाच साध्या-
भाववदवृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम् । महानसं वह्निमत्, धूमादित्यादौ सा-
वह्निस्तदभाववान् जलह्रदादिस्तद्वृत्तित्वं नीरूपादावप्रवृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूमे
इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः । धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यो धूमस्तदभाववदयो-
लकं तद्वृत्तित्वमेव वह्न्यादाविति नातिव्याप्तिः ॥

## व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ॥

(प०) ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र का नाम पक्षधर्मता इत्य-
पेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति । व्याप्यो नाम व्याप्त्या-
श्रयः । स च धूमादिरेव तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मतेत्यर्थः ॥

---

१ वह्निमान्धूमादित्यादौ समवायेन वह्न्यभावमादायाव्याप्तिवारणार्थं प्रतियोगि-
प्रथमनवच्छिन्नान्तं विशेषणम् । २ तत्रैव महानसीयवह्न्यभावमादायाव्याप्तिवार-
द्वितीयमवच्छिन्नान्तम् । ३ कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिवारणायाभावे वैय-
धिकरण्यावच्छिन्नान्तं विशेषणम्, प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्ट-
प्रतियोगिनो यदनधिकरणं तद्वृत्तिरिति तस्यार्थः । ४ वह्निमान्धूमादित्यादौ सा-
ध्याभावाधिकरणे स्वावयवे धूमस्य समवायेन वृत्तित्वादव्याप्तिरतस्तद्वारणाय
हेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नत्वविशेषणम् । ५ धूमवान्वह्नेरित्यादौ ह्रदादिवृत्ति-
त्वविशिष्टसाध्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभावस्य वह्नौ सत्त्वादतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय वृत्ति-
सामान्याभावो विवक्षित इति बोध्यम् । ६ इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ ।

अनुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थं च ॥

(न्या०) अनुमानं विभजते—स्वार्थमिति ।

(प०) अथ कथमनुमानमनुमितिकरणं कथं वा तस्मादनुमितेर्जनिरिति जिज्ञासमानं प्रति लाघवादनुमानविभागमुखेनैव बुबोधयिषुरनुमानं विभजते—अनुमानमिति । द्वैविध्यं दर्शयति—स्वार्थं परार्थं चेति ।

स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः । तथाहि—स्वयमेव भूयोदर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् ॥

(न्या०) स्वार्थानुमानं नाम न्यायाप्रयोज्यानुमानम् ॥

(प०) स्वस्यार्थः प्रयोजनं यस्मात् तत्स्वार्थमिति समासः । स्वप्रयोजनं च स्वस्यानुमेयप्रतिपत्तिः । एवं परार्थमित्यस्यापि । अयमिति । व्याप्तिबलेन लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । तच्च धूमादि । तस्य परामर्शो ज्ञानविशेष इत्यर्थः । तस्मादिति । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः । स्वार्थानुमानमुपसंहरति—तदेतदिति । यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुस्तस्मादेतत्स्वार्थानुमानमित्यर्थः ॥

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम् । यथा पर्वतो वह्निमान् । धूमवत्त्वात् । यो यो धूमवान्स स वह्निमान् यथा महानसम् । तथा चायम् । तस्मात्तथेति । अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ।

(न्या०) न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम् । न्यायत्वं च प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकसमुदायत्वम् । अवयवत्वं च [1]प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम् ॥

---

१ प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वं नाम प्रतिज्ञादिप्रतियोगिकभेदपञ्चकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वम् । प्रतिज्ञादिषु पञ्चसु प्रत्येकस्मिन् स्वस्वप्रतियोगिकभेदाभावात् भेदचतुष्टयसत्त्वेऽपि भेदपञ्चकस्याभावेन 'प्रतिज्ञाभेदादिभेदपञ्चकवान्न' इत्याकारकप्रतीतिसाक्षिकभेदस्य प्रत्येकं प्रतिज्ञादिषु सत्त्वेन लक्षणसमन्वयः । 'प्रतिज्ञाभेदादिभेदपञ्चकवान्न'

(प०) क्रमप्राप्तं परार्थानुमानमाह—यत्त्विति । यत्र पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानमिति संबन्धः । पञ्चावयवेति । अथावयवत्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वम् । प्रतिज्ञादिषु तदसंभवात्कथमेतेऽवयवाः स्युरिति चेदनुमानवाक्यैकदेशत्वात्तु अवयवा इत्युपचर्यंत इति गृहाण । नन्वेवमपि पञ्चावयववाक्यस्यानुमानत्वमेव न विचारसहं तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाभावादिति चेन्मैवम् । लिङ्गपरामर्शप्रयोजकलिङ्गप्रतिपादकत्वेनानुमानमित्युपचारमात्रत्वात् । तदुदाहरति—यथेति । तथा चायमिति । अयं च पर्वतस्तथा वह्निव्याप्यधूमवानित्यर्थः । तस्मात्तथेति । वह्निव्याप्यधूमवत्त्वाद्वह्निमानित्यर्थः । अनेनेति । अनेन पञ्चावयववाक्येनेत्यर्थः ॥

**प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः । पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा ॥ धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम् । तथा चायमित्युपनयः । तस्मात्तथेति निगमनम् ॥**

(प०) ननु पञ्चावयववाक्यमित्यत्र के ते पञ्चावयवा अतस्तान्दर्शयति—प्रतिज्ञेति । प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वमवयवत्वम् । साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं प्रतिज्ञा । पञ्चम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः । व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनमुदाहरणम् । उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकवचनमुपनयः । पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम् । इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन्विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वह्निमानित्यादिना ॥

**स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ॥**

(प०) लिङ्गेति । ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति वृद्धोक्तं न युक्तम्, इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीतधूमादित्यादौ लिङ्गाभावेऽप्यनुमितिदर्शनादित्यभिप्रायेणाह लिङ्गपरामर्श एव करणमित्याचष्टे—लिङ्गपरामर्श एवेति । अनुमानमुपसंहरति—तस्मादिति । अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः । अयमेव तृतीयज्ञानमित्युच्यते । तथाहि—महानसादौ धूमाग्न्योर्व्याप्तिं गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तदाद्यम् । पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्द्वितीयम् । अत्रैव वह्निव्याप्यत्वेन यद्धूमज्ञानं तत्तृतीयम् । इदमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । अनुमानमिति । व्यापारवत्कारणं करणमिति मते व्याप्तिज्ञानमेवानुमानं लिङ्गपरामर्शो व्यापार इत्यवधेयम् ॥

**लिङ्गं त्रिविधम् । अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि केवल-**

---

इत्याकारकभेदस्य प्रतियोगिता साध्यभेदप्रयोजकत्वेति तदवच्छेदकं साध्यभेदप्रयोजकमिति 'प्रतिज्ञाभेदादिभेदप्रयोजनात्' इत्ययं भेदः प्रतिज्ञादिप्रतियोगिकभेदाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः ।

व्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसमित्यन्वयव्याप्तिः । यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा ह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः ॥

(न्या०) अन्वयेनेति । व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिमानित्यर्थः । व्यतिरेकेणेति । व्यतिरेको नामाभावः । तथा च साध्याभावहेत्वभावयोर्व्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिः । इयं च व्याप्तिर्यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभाव इति । यत्रपदवीप्सया[1] वह्न्यभाववति यावति धूमाभावग्रहणे यावत्पदस्य व्यापकत्वपरतया धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वं लभ्यते । एवं[2] च वह्न्यभावनिष्ठव्याप्तेः स्वाश्रयीभूतवह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वसंबन्धेन धूमनिष्ठतया व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वेन [धूमवत्त्वं] व्यतिरेकित्वेन, धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिमत्त्वेनान्वयित्वेन च गीयते । व्यतिरेकपरामर्शस्तु वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिधूमवान्पर्वत इत्याकारकः ॥

(प०) अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—अन्वयेति । तृतीयायाः प्रयोज्यत्वमर्थः । साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः । तदभावयोः साहचर्यं व्यतिरेकः । तथा चान्वयप्रयोज्यव्याप्तिमव्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः । केवलव्यतिरेकिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेनेति । केवलान्वयिनि व्यभिचारवारणाय व्यतिरेकेणेति । तथा चान्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव । व्यतिरेकव्याप्तिश्च साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः । तदुक्तं—व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते । तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते ॥ अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते । साध्याभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्ययः ॥ इति ॥

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्पटवत् । अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ॥

(न्या०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । केवलान्वयिसाध्यकत्वं हेतोः केवलान्वयित्वम् । साध्ये केवलान्वयित्वं चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम् । तथाच अभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वं केवला-

---

[1] वीप्सा द्विरुच्चारणम् । [2] धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वग्रहे वह्न्यभावे धूमाभावव्याप्यत्वस्य तुल्यवित्तिवेद्यतया ग्रहादिति भावः ।

न्वयिहेतोर्लक्षणम् । एतच्च लक्षणं हेतोर्व्यतिरेकित्वेऽपि संगच्छते । साध्यस्य केवलान्वयित्वादेव व्यतिरेकव्याप्तेरभावादन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयीति मूलकारोक्तं लक्षणमुपपन्नम् । नचात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वमाकाशाभावे संयोगाभावे चाव्याप्तमिति वाच्यम् । स्वविरोधिवृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यैव तदर्थत्वात् । एकंजातीयसंबन्धेन सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वमिति नव्याः ॥

(प० ) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्मिन् सं तथा । प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—अत्रेति अभिधेयत्वसाध्यकानुमान इत्यर्थः । ननु कुतस्तन्निषेधोऽतस्तत्र हेतुमाह—सर्वस्येति । पदार्थमात्रस्येत्यर्थः । तथाच सकलपदाभिधेयत्वस्येश्वरप्रमाविषयत्वस्य चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वेन तदभावाप्रसिद्ध्या तद्घटितव्यतिरेकव्याप्तिर्न संभवत्येवेति भावः ॥

**व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् । यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत् तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति । पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ।**

---

१ अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपीत्यर्थः । २ स्वविरोधीति । अत्र 'स्वविरोधिवृत्तिमत्' इति विशेषणद्वयमत्यन्ताभावस्य । स्वविरोधी वृत्तिमांश्च योऽत्यन्ताभावस्तत्प्रतियोगिभिन्नत्वमित्यर्थः । स्वविरोधित्वस्य स्वाधिकरणावृत्तिरर्थः । स्वपदेन लक्ष्यघटकीभूतात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेनाभिमतस्य ग्रहणम् । तेन—स्वाधिकरणावृत्तिः वृत्तिमांश्च योऽत्यन्ताभावस्तत्प्रतियोगिभूतं यद्यत्त्वं तद्भिन्नत्वमित्यर्थो निष्पन्नः । इदं च केवलान्वयित्वेनाभिमतं यदि स्वपदेन धर्तुं शक्येत तदाऽव्याप्तिः । संयोगाभाव आकाशाभावश्च न स्वपदेन धर्तुं शक्यौ, तयोः स्वपदेन ग्रहणे अग्रे अत्यन्ताभावपदेन क्रमेण संयोगाकाशावेव ग्राह्यौ । तच्च न संभवति संयोगस्य संयोगाभावात्मकस्वविरोधित्वाभावात्, आकाशस्य च आकाशाभावात्मकस्वविरोधित्वेऽपि वृत्तिमत्त्वाभावात् । तस्मात् स्वपदेन घटादेर्ग्रहणं तद्विरोधी वृत्तिमांश्च अत्यन्ताभावः घटाद्यभावः तत्प्रतियोगिभूतं यद्यत्त्वं घटादिकं तद्भिन्नत्वस्य अभिधेयत्वादौ संयोगाभावादौ च सत्त्वान्नाव्याप्तिः । नचात्र अभिधेयत्व—संयोगाभाव—आकाशाभावादिलक्ष्यव्यक्तिभेदेन लक्षणे स्वपदग्राह्यं भिद्येतेति अभिधेयम्, यत्र लक्ष्यस्यैव स्वपदग्राह्यत्वं—अयं स्वपदग्राह्यसामानाधिकरण्यं नेत्युक्तमित्यादौ—तत्रैव लक्ष्यभेदेन स्वपदग्राह्यभेदात् प्रकृते तु स्वभिन्नस्यैव लक्षणेन लक्ष्यभिन्नस्यैव स्वपदग्राह्यत्वादिति स्वविरोधित्वस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वनिवेशात्तु सुगमविस्तरः ।

(न्या०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति । अन्वयव्याप्तिशून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वं केवलव्यतिरेकित्वम् । **यथा पृथिवीति** । अत्र पृथिवीत्वावच्छिन्नं पक्षः । पृथिवीतरजलाद्यष्टभेदः साध्यः । गन्धवत्त्वं हेतुः । अत्र यद्गन्धवत्तदितरभेदवदित्यन्वयदृष्टान्ताभावाद्गन्धव्यापकेतरभेदसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिग्रहासंभवात् । किंतु यत्र यत्र पृथिवीतरभेदाभावस्तत्र तत्र गन्धाभावो यथा जलादिकमिति व्यतिरेकदृष्टान्ते जलादावितरभेदाभावरूपसाध्याभावव्यापकता गन्धाभावे गृह्यते । इममेवार्थं मनसि निधाय यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् यथा जलमिति ग्रन्थेन मूलकारो व्यतिरेकव्याप्तिमेव प्रदर्शितवान् । एवंप्रकारेण व्यतिरेकव्याप्तिग्रहानन्तरमितरभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिगन्धवती पृथिवीत्याकारकव्यतिरेकिपरामर्शात्पृथिवीत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितेतरभेदत्वावच्छिन्नविधेयताका पृथिवी इतरभेदवतीत्याकारकानुमितिर्जायत इति तत्त्वम् । यथाश्रुतमूलार्थस्तु—**यथा जलमिति** । जलं इतरभेदाभाववत् इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववच्च । इत्येवंप्रकारेण गन्धाभावनिरूपिता व्याप्यता इतरभेदाभावे गृह्यत इत्यर्थः । **न चेयं तथा** । इयं=पृथिवी तथा इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववती न किंतु तदभावात्मकगन्धवती । **तस्मान्न तथेति** । तच्छब्देन गन्धाभावाभावरूपस्य गन्धस्य परामर्शेन तस्मादिति पञ्चम्यन्तात् गन्धाभावाभाववत्त्वादित्यर्थोपलब्धिः । तथा=इतरभेदाभाववती । न इत्यस्याभावः । तथाच इतरभेदाभावाभाववती इतरभेदवतीत्यर्थः ॥

(प०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति । व्यतिरेकेण व्याप्तिर्यस्मिंस्तत्तथा । अन्वयव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति । न चेयं तथेति । इयं पृथिवी न तथा न गन्धाभाववतीत्यर्थः ॥ तस्मान्न तथेति । गन्धाभाववत्त्वाभावादितरभेदाभाववती नेत्यर्थः । नन्वत्र किमिति नान्वयव्याप्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—अत्रेति । इतरभेदसाधकानुमान इत्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात् । यन्नैवम् तन्नैवम् । यथा घटः । यथा प्रत्यक्षादिकं प्रमाणमिति व्यवहर्तव्यं प्रमाकरणत्वात् । यन्नैवं तन्नैवम् । यथा प्रत्यक्षाभासः । विवादास्पदम् आकाशमिति व्यवहर्तव्यं शब्दवत्त्वादित्यादिकमपि केवलव्यतिरेकीति द्रष्टव्यम् ॥

**संदिग्धसाध्यवान् पक्षः । यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः ॥**

(न्या०) पक्षलक्षणमाह—**संदिग्धेति** । साध्यप्रकारकसंदेहविशेष्यत्वं पक्षत्वम् । इदं च लक्षणमनुमितेः पूर्वं साध्यसंदेहो नियमेन जायत इत्यभिप्रायेण प्राचीनैः कृतम् । गगनविशेष्यकमेघप्रकारकसंदेहाभावदशायामपि गृहमध्यस्थपुरुषस्य घनगर्जितश्रवणेन गगनं मेघवदित्याकारिकाया गगनत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितमेघत्वावच्छिन्नविधेयताकाया अनुमितेर्दर्शनात्प्राचीनलक्षणं विहाय नवीनैरनुमित्युद्देश्यत्वं पक्षत्वमिति स्थिरीकृतम् ॥

(प०) अथ पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वादित्यत्र किं नाम पक्षतेत्यपेक्षायां तं निर्वक्ति—संदिग्धेति । सपक्षवारणाय संदिग्धेति ॥

**निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । यथा तत्रैव महानसम् ।**

(न्या०) सपक्षलक्षणमाह—**निश्चितेति** । साध्यप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं सपक्षत्वम् । निश्चयश्च महानसं वह्निमदित्याकारकः ।

(प०) निश्चितेति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रैवेति धूमवत्त्वे हेतावित्यर्थः ॥

**निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः । यथा तत्रैव महाह्रदः ॥**

(न्या०) विपक्षलक्षणमाह—**निश्चितसाध्याभावेति** । साध्याभावप्रकारनिश्चयविशेष्यत्वं विपक्षत्वम् । निश्चयश्च ह्रदो वह्न्यभाववानित्याकारकः ।

(प०) निश्चितेति । सपक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्येति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रैव धूमवत्त्व एव ॥

**सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः ॥**

(न्या०) एवं सद्धेतून्निरूप्य हेत्वाभासान्निरूपयति—**सव्यभिचारेति** । हेतुवदाभासन्त इति हेत्वाभासाः । दुष्टहेतव इत्यर्थः । दोषाश्च व्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिबाधाः । एतद्विशिष्टा हेतवः दुष्टहेतवः । यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितितत्करणान्यतरप्रति-

१ अत्र तृतीयार्थः अवच्छिन्नत्वं तस्य प्रतिबन्धकत्वेऽन्वयः । ज्ञानस्येत्यत्र ज्ञानपदमनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितनिश्चयपरं षष्ठ्यर्थः वृत्तित्वं तस्य च विषयकत्वेऽन्वयः । तथा च अनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितनिश्चयवृत्तियद्विषयकत्वावच्छिन्नं प्रकृतानुमि-

बन्धकत्वं तत्त्वं दोषसामान्यस्य लक्षणम् । हेतौ दोषज्ञाने सत्यनुमितिप्रतिबन्धो जायते व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धो वा । अतो वादिनिग्रहाय वादिनोद्भाविते हेतौ दोषोद्भावनार्थं दुष्टहेतुनिरूपणमित्यर्थः । पर्वतो वह्निमान्, प्रमेयत्वादित्यत्र प्रमेयत्वहेतौ वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारे ज्ञाते वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

( प० ) हेतून्निरूप्य प्रसङ्गाद्धेत्वाभासानाह—सव्यभिचारेति । अत्रेदं बोध्यम्—अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते तानि कानीति चेच्छ्रूयताम् । पक्षधर्मत्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षाद्व्यावृत्तिरबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं चेति । अबाधितः साध्यरूपो विषयो यस्य तत्तथोक्तम् । तस्य भावस्तत्त्वम् । एवं साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इत्युच्यते । स नास्ति यस्य सोऽसत्प्रतिपक्षः । तस्य भावस्तत्त्वमिति बोध्यम् । केवलान्वयि तु चतूरूपोपपन्नमेव स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्व्यावृत्तिविपर्ययात् । केवलव्यतिरेक्यपि तथा तस्य सपक्षविपर्ययेण तत्सत्त्वविपर्ययादिति । उपदर्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वात् । हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः । तत्त्वं चानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम् । बाधस्थले वह्निरनुष्ण इत्यनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानमुष्णत्ववद्वह्निरनुष्णत्वसाधकं द्रव्यत्वमित्याकारकं तद्विषयत्वस्य विषयतासंबन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः । सद्धेतुवारणाय यथार्थेति । घटादिवारणाय अनुमितितत्करणप्रतिबन्धकेति । व्यभिचारिणि अव्याप्तिवारणाय तत्करणान्यतरेति ॥

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः । स त्रिविधः साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् । तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः । यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वादिति । प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् ॥

(प०) तत्रेति । साधारणादित्रितयमध्य इत्यर्थः । अथ विरुद्धेऽतिप्रसक्तिरिति मा स्म दुष्यः सपक्षवृत्तित्वस्यापि निवेशात् । अथैवमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जागर्तीति मा वद यतः पक्षवृत्तित्वस्यापि तथात्वात् ॥

सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः । यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ॥

---

तितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकत्वं तत्त्वं हेत्वाभासत्वमित्यर्थः । दोषविषयकज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात् दोषविषयकत्वं प्रतिबन्धकतावच्छेदकं भवति प्रतिबन्धकता च दोषविषयकज्ञाननिष्ठा । तदुक्तं दोषस्य लक्षणं [illegible] ।

(न्या०) असाधारण इति । सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वम् । साध्यवदवृत्तित्वं च साध्यासामानाधिकरण्यम् । हेतौ साध्यासामानाधिकरण्ये निश्चिते साध्यासामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

( प० ) पक्षमात्रेति । सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति सपक्षविपक्षव्यावृत्तः । केवलव्यतिरेकवारणाय तद्भिन्न इत्यपि देयम् ॥

**अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी । यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद्दृष्टान्तो नास्ति ।**

(न्या०) अनुपसंहारिणं लक्षयति—अन्वयेति । उभयत्र दृष्टान्ताभावादन्वयव्याप्तिज्ञानव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानोभयसामग्री नास्तीत्यर्थः । सर्वस्यैव पक्षत्वात्पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः ॥

(प०) अन्वयेति । केवलान्वयिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेति । केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरेकेति । अत्रेति । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ॥

**साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम् ॥**

( न्या० ) विरुद्धं लक्षयति—साध्याभावव्याप्त इति । साध्याभावव्याप्तिः साध्याभावनिरूपितव्यतिरेकव्याप्तिः साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् । तथाच पक्षविशेष्यकसाध्याभावव्याप्यहेतुप्रकारकज्ञानात् पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । एवं सत्प्रतिपक्षेऽपि । विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्विशेषस्तु विरुद्धहेतोरेकत्वेन सत्प्रतिपक्षहेतोर्द्वित्वेन च ज्ञातव्यः । सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू विरुद्ध एको हेतुरिति यावत् । साध्याभावसाधकहेतुः साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इत्यसामर्थ्यसूचनमपि ॥

( प० ) विरुद्धं लक्षयति—साध्येति । सद्धेतुवारणाय साध्याभावव्याप्त इति । सत्प्रतिपक्षवारणाय सत्प्रतिपक्षभिन्न इत्यपि बोध्यम् । कृतेति । कार्यत्वादित्यर्थः । कृतकत्वमिति । अनित्यत्वेन व्याप्तमिति । यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमिति व्याप्तिर्भवत्येव तथेति भावः ॥

---

१ हेतुसाध्ययोर्येन निश्चयस्तस्य दृष्टान्तत्वात् यत्र साध्यसंशयस्तस्य पक्षत्वात् साध्यसंदेहवत्त्वस्य साध्यनिश्चयवत्त्वस्य च विरोधात् पक्षभिन्नस्यैव दृष्टान्तत्वादिति भावः ॥

साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत् । शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद्घटवत् ॥

(प०) सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—साध्येति । यस्य हेतोः साध्याभावसाधकं साध्याभावस्यानुमापकं हेत्वन्तरं प्रतिपक्षो हेतुः विद्यते स हेतुः सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थः । अयमेव प्रकरणसम इत्युच्यते । विरुद्धवारणाय हेत्वन्तरं यस्येति । वह्न्यादिवारणाय साध्याभावेति ॥

असिद्धस्त्रिविधः आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति ॥

(प०) असिद्धं विभजते—असिद्ध इति । आश्रयासिद्धान्यतमत्वमसिद्धत्वम् ॥

आश्रयासिद्धो यथा गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् । सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः स च नास्त्येव ॥

(न्या०) आश्रयासिद्ध इति । आश्रयासिद्धिर्नाम पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षाप्रसिद्धिः । यथेति । अत्रारविन्दे गगनीयत्वाभावे निश्चिते गगनीयत्वविशिष्टारविन्दे सौरभ्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) आश्रयासिद्धत्वं च पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम् । भवति हि अरविन्दरूपपक्षे अरविन्दत्वे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्, अत्रेति । गगनीयत्वविरहात् । ननु किमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत्र आह—अत्रेति । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ।

स्वरूपासिद्धो यथा । शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्, रूपवत् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् ॥

(न्या०) स्वरूपासिद्ध इति । स्वरूपासिद्धिर्नाम पक्षे हेत्वभावः । तथाच हेत्वभावविशिष्टपक्षज्ञानात्पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकपरामर्शानुपपत्त्या परामर्शप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । सन्देहाभावेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षे इति । घटाद्यभाववारणाय हेत्विति । सोऽयं स्वरूपासिद्धः शुद्धासिद्धभागासिद्धविशेषणासिद्धविशेष्यासिद्धभेदेन चतुर्विधः । तत्राद्यस्तूपदर्शित एव । द्वितीयो यथा—उद्भूतरूपादिचतुष्टयं गुणः, रूपत्वादित्यत्र रूपत्वहेतोः पक्षैकदेशावृत्तित्वेन तस्य भागे स्वरूपासिद्धत्वम् । तृतीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः, रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वादित्यत्र रूपवत्त्वविशेषणस्य वायावभावेन तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्यापि तदभा-

त्वेन तस्य स्वरूपासिद्धत्वं निर्वहति विशेषणाभावे विशिष्टस्याप्यभावात् । तुरीयो यथा—अत्रैव विशेषणविशेष्यवैपरीत्येन हेतुः । तस्य स्वरूपासिद्धत्वं तु विशेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभावादिति बोध्यम् ॥

**सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः । साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः । साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो इति साध्यव्यापकता । यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति अयोगोलके आर्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनाव्यापकता । एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम् ॥**

(न्या०) व्याप्यत्वासिद्ध इति । प्रकृते धूमव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेदमे आर्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यत्वं गृहीतम् । एवं वह्नेरव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्वह्नौ तदव्याप्यत्वं गृहीतम् । तदेव व्यभिचरितत्वम् । तथा चोपाधिव्यभिचरितत्वं साधने गृहीतं चेदुपाधिभूतार्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यधूमव्यभिचारित्वं गृहीतमेव अनुमानप्रकारश्च पूर्वानुमानहेतुं पक्षीकृत्य वह्निर्धूमव्यभिचारी धूमव्यापकार्द्रेन्धनसंयोगव्यभिचारित्वात् घटत्वादिवत् । यो यत्साध्यव्यापकव्यभिचारी स सर्वोऽपि साध्यव्यभिचारीति । एवंप्रकारेण प्रकृतानुमानहेतुभूते पक्षे साध्यव्यभिचारोत्थापकतया दूषकत्वमुपाधेः फलम् । तथाच धूमाभाववद्वृत्तित्वरूपधूमव्यभिचारे गृहीते वह्नौ धूमाभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

( प० ) व्याप्यत्वासिद्धं निरूपयति—सोपाधिक इति । ननु कोऽयमुपाधिरत आह । साध्येति । साधनाव्यापक उपाधिरित्युक्ते शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादित्यत्र सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणार्हत्वमप्युपाधिः स्यात्तदर्थं साध्यव्यापकत्वमुक्तम् । तावत्युक्ते सामान्यवत्त्वादिनाऽनित्यत्वसाधने कृतकत्वमुपाधिः स्यात्तदर्थं साधनाव्यापकत्वमुक्तम् । उपाधिभेदमादायासंभववारणाय व्यापकत्वशरीरेऽन्यत्वान्तपदमादेयम् । साधनभेदमादाय साधनसोपाधित्ववारणाय-

पकशरीरेऽप्यलन्तपदमावश्यकं देयम् । सोऽयमुपाधिस्त्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति । तत्राद्य उपदर्शितः । एवं क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा अधर्मजनिका हिंसात्वात्, क्रतुबाह्यहिंसावदित्यत्र निषिद्धत्वमुपाधिः तस्य यत्राधर्मजनकत्वं तत्र निषिद्धत्वमिति साध्यव्यापकता । यत्र हिंसात्वं तत्र न निषिद्धत्वमिति निषिद्धत्वमुपाधिः साधनाव्यापकः । क्रतुहिंसायां निषिद्धत्वस्याभावात् । 'न हिंस्यात्सर्वा भूतानि' इति सामान्यवाक्यतः 'पशुना यजेत' इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात् । अतो हिंसात्वं नाधर्मजनकत्वे प्रयोजकमपि तु निषिद्धत्वमेवेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । द्वितीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः । तस्य यत्र प्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं रूपे व्यभिचारात् । किंतु द्रव्यत्वलक्षणो यः पक्षधर्मस्तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । आत्मनि व्यभिचारवारणाय बहिःपदम् । यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वमिति साधनाव्यापकत्वं च वायावुद्भूतरूपविरहात् । तृतीयो यथा—ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र भावत्वमुपाधिः तस्य यत्र विनाशित्वं तत्र भावत्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं प्रागभावे भावत्वविरहात् । किं तु जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नविनाशित्वं यत्र तत्र भावत्वमिति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । यत्र जन्यत्वं तत्र भावत्वमिति साधनाव्यापकत्वं च ध्वंसे भावत्वविरहात् । एवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वमुपाधिः । श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वान्न केवलसाध्यव्यापकत्वं किं तु साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाव्यापकत्वं चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् ॥

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः । यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति । अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शनप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम् ॥

(न्या०) यस्येति । यस्य हेतोः साध्यस्याभावः साध्याभावः । स च प्रमाणान्तरेण प्रत्यक्षादिप्रमाणेन निश्चितः स बाधित इत्यर्थः । तथाच प्रात्यक्षिकसाध्यबाधनिश्चये जाते साध्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । बाधितसाध्यकत्वाद्बाधितहेतुरित्युच्यते ॥ इति न्यायबोधिन्यामनुमानपरिच्छेदः ॥

(प०) यस्येति । सद्धेतुवारणाय प्रमाणान्तरेणेति । पक्षादिवारणाय साध्येति ।

इति पदकृत्येऽनुमानखण्डः

## उपमानपरिच्छेदः ।

**उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसंबन्धज्ञानमुपमितिः तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । तथाहि कश्चिद्गवयपदार्थमजानन्कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद्गोसदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गोसदृशं पिण्डं पश्यति तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥**

(न्या०) उपमानं लक्षयति—**उपमितिकरणमिति** । उपमितिं लक्षयति—**संज्ञासंज्ञीति** । संज्ञा नाम पदम् । संज्ञी अर्थः । तयोः संबन्धः शक्तिः । तथाच पदपदार्थसंबन्धज्ञानमुपमितिरित्यर्थः । उपमानं नामातिदेशवाक्यार्थज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं व्यापारः । उपमितिः फलम् । गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्याकारकवाक्याद्गोसादृश्यावच्छिन्नविशेष्यकगवयपदवाच्यत्वप्रकारकं यज्ज्ञानं जायते तदेव करणम् ॥ इति न्यायबोधिन्यामुपमानपरिच्छेदः ॥

(प०)अवसरसंगतिमभिप्रेत्यानुमानानन्तरमुपमानं निरूपयति-**उपमितीति** । उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः । कुठारादिवारणाय मितीति । प्रत्यक्षादिवारणाय उपेति । **संज्ञासंज्ञीति** । अनुमित्यादिवारणाय संबन्धेति । संयोगादिवारणाय संज्ञासंज्ञीति । **असौ गवयपदवाच्य इति** । अभिप्रेतो गवयो गवयपदवाच्य इत्यर्थः । तेन गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसंग इति दूषणमपास्तम् । तथाच गोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । उपमितिः फलमिति सारम् । तच्चोपमानं त्रिविधं सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानमसाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानं वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च । तत्राद्यमुक्तमेव । द्वितीयं यथा—खड्गमृगः कीदृगिति पृष्टे नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्चेति तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशं पिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति तदनन्तरं खड्गमृगः खड्गमृगपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते । अत्र नासिकालसदेकशृङ्ग एवासाधारणधर्मः । तृतीयं यथा—उष्ट्रः कीदृगिति पृष्टे अश्वादिवन्नसमानपृष्ठो ह्रस्वग्रीवशरीरश्चेति आप्तोक्ते कालान्तरे तत्पिण्डदर्शनाद्वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणं तत उष्ट्र उष्ट्रपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥

इति पदकृत्ये उपमानखण्डः ॥

## शब्दपरिच्छेदः ।

**आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता । वाक्यं पदसमूहः । यथा गामानयेति । शक्तं पदम् । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः ॥**

(न्या०) [ शब्दं लक्षयति—**आप्तेति** । आप्तोच्चरितत्वे सति वाक्यत्वं शब्दस्य लक्षणम् । प्रमाणशब्दत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् । वाक्यत्वमात्रोक्तावनाप्तोच्चरितवाक्येऽतिव्याप्तिरत आप्तोच्चरितत्वनिवेशः । तावन्मात्रोक्तौ जलगडदशादावतिव्याप्तिरतो वाक्यत्वम् । आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् । तथा च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानजन्यशब्दत्वमिति पर्यवसन्नोऽर्थः । वस्तुतस्तु ] पदज्ञानं करणम् । वृत्तिज्ञानसहकृतपदज्ञानजन्यपदार्थोपस्थितिर्व्यापारः । वाक्यार्थज्ञानं शाब्दबोधः फलम् । वृत्तिर्नाम शक्तिलक्षणान्यतररूपा । शक्तिर्नाम घटादिविशेष्यकघटादिपदजन्यबोधविषयत्वप्रकारक ईश्वरसंकेतः ईश्वरसंकेतो नाम ईश्वरेच्छा । सैव शक्तिरित्यर्थः । शक्तिनिरूपकत्वमेव पदे शक्तत्वम् । विषयतासंबन्धेन शक्त्याश्रयत्वं शक्यत्वम् । शक्यसंबन्धो लक्षणा । सा द्विविधा गौणी शुद्धा चेति । गौणी नाम सादृश्यविशिष्टे लक्षणा । यथा सिंहो माणवक इत्यादौ सिंहपदस्य सिंहसादृश्यविशिष्टे लक्षणा । शुद्धा द्विविधा । जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा चेति । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहल्लक्षणा । यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवाहसंबन्धस्य तीरे सत्त्वात्तादृशशक्यसंबन्धरूपलक्षणाज्ञानाद्गङ्गापदात्तीरोपस्थितिः । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजिका लक्षणा अजहल्लक्षणा । यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकपदस्य दध्युपघातके लक्षणा । लक्ष्यतावच्छेदकं दध्युपघातकत्वम् । तेन रूपेण दध्युपघातकानां सर्वेषां काकबिडालकुक्कुटसारमेयादीनां बोधात् । जहदजहल्लक्षणा वेदान्तिनां मते । शक्यलक्ष्याणां सर्वेषां बोधात् । जहदजहल्लक्षणा वेदान्तिनां मते । [ सा च शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधप्रयोजिका यथा तत्त्वमसीत्यत्र सर्वज्ञत्वकिंचिज्ज्ञत्वपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधनात् ]

(प० ) अवसरसंगतिमभिप्रेत्योपमानानन्तरं शब्दं निरूपयति—**आप्तेति** । आप्तविप्रलम्भकयोर्वाक्यस्य शब्दप्रमाणशब्द इति । शब्दप्रमाणमित्यर्थः । [illegible]

१ कुण्डलितः पाठः प्रक्षिप्तः, प्राचीनलिखितपुस्तकेष्वनाधार । २ [illegible] [illegible] । पूर्वाचार्ये शब्दस्य लक्षण[illegible] [illegible] इति [illegible] [illegible] इति भावः । ३ प्रयोगेति । [illegible] शुद्धा वाक्यं प्रयुङ्क्ते इति [illegible] [illegible] आप्तत्व[illegible] [illegible]

त्ववारणाय आप्तेति । ननु कोऽयमाप्त इत्यत आह—आप्तस्त्विति । यथार्थवक्ता यथाभूताबाधितार्थोपदेष्टा । वाक्यं लक्षयति—वाक्यमिति । घटादिसमूहवारणाय पदेति । शक्तमिति । निरूपकतासंबन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः । अस्मादिति । घटपदाद्धटरूपोऽर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छैव शक्तिरित्यर्थः । अर्थस्मृत्यनुकूलपदपदार्थसंबन्धत्वं तल्लक्षणम् । शक्तिरिव लक्षणापि पदवृत्तिः । अथ केयं लक्षणा । शक्यसंबन्धो लक्षणा । सा च त्रिधा । जहत्–अजहत्–जहदजहद्भेदात् । वर्तते च गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाहसंबन्धस्तीरे । लक्षणाबीजं च तात्पर्यानुपपत्तिः । अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्यानुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति । छत्रिणो यान्तीत्यादौ द्वितीया । सोऽयमश्व इत्यादौ तृतीया ॥

**आकाङ्क्षा योग्यता संनिधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः । पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थाबाधो योग्यता । पदानामविलम्बेनोच्चारणं संनिधिः । तथा च आकाङ्क्षादिरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम् आकाङ्क्षाविरहात् । वह्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणं योग्यताविरहात् । प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणं सांनिध्याभावात् ॥**

(न्या०) आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति । अव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेन यत्पदे यत्पदप्रकारकज्ञानव्यतिरेकप्रयुक्तो यादृशशाब्दबोधाभावस्तादृशशाब्दबोधे तत्पदे तत्पदवत्त्वमाकाङ्क्षा । यथा घटमित्यादिस्थलेऽव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेनाम्पदं घटपदवदित्याकारकाम्पदविशेष्यकघटपदप्रकारकज्ञानसत्त्वे घटीयं कर्मत्वमिति बोधो जायते । अम् घट इति विपरीतोच्चारणे तु तादृशज्ञानाभावात्तादृशशाब्दबोधो न जायते । अतस्तादृशाकाङ्क्षाज्ञानं शाब्दबोधे कारणम् । अर्थाबाध इति । बाधाभावो योग्यतेत्यर्थः । अग्निना सिञ्चेदित्यत्र सेककरणत्वस्य जलादिधर्मस्य वह्नौ बाधनिश्चयसत्त्वान्न तादृशवाक्याच्छाब्दबोधः । संनिधिं निरूपयति—पदानामिति । असहोच्चारितानि विलम्बोच्चारितानि ॥

(प०) असंभववारणाय पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त इति । पुनरसंभववारणाय पदान्तरेति । अर्थेति । आकाङ्क्षावारणाय अर्थेति । पदानामिति । असहोच्चारितेष्वतिव्याप्तिवारणाय अविलम्बेनेति । आकाङ्क्षावारणाय पदानामिति । आका-

ङ्क्षादिशून्यवाक्यस्यात्र प्रमाणत्वं निषेधयति—**तथा चेति** । आकाङ्क्षादिकं शाब्दहेतुरित्युक्ते नेत्यर्थः । अनाकाङ्क्षाद्युदाहरणं दर्शयति—**यथेति** ॥

**वाक्यं द्विविधम् । वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् ॥**

(न्या०) **वैदिकमिति** । वेदवाक्यमित्यर्थः ॥ इदमुपलक्षणम् । वेदमूलस्मृत्यादीन्यपि ग्राह्याणि । **लौकिकं त्विति** । वेदवाक्यभिन्नमित्यर्थः । आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् । इति न्यायबोधिन्यां शब्दपरिच्छेदः ॥

**वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ॥**

( प० ) नन्वेतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता । प्रमाविभाजकवाक्ये शाब्दस्याप्युद्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितमित्यत आह—**वाक्यार्थेति** । शाब्दत्वं च शब्दात्प्रत्येमीत्यनुभवसिद्धा जातिः । शाब्दबोधक्रमो यथा—चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यत्र ग्रामकर्मकगमनानुकूलवर्तमानकृतिमांश्चैत्र इति शाब्दबोधः । द्वितीयायाः कर्मत्वमर्थः । धातोर्गमनम् । अनुकूलत्वं च संसर्गमर्यादया भासते । लटो वर्तमानत्वमाख्यातस्य कृतिः । तत्संबन्धः संसर्गमर्यादया भासते । रथो गच्छतीत्यत्र गमनानुकूलव्यापारवान् रथ इति शाब्दबोधः । स्नात्वा गच्छतीत्यत्र गमनप्रागभावावच्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनानुकूलवर्तमानकृतिमानिति शाब्दबोधः । क्त्वाप्रत्ययस्य कर्ता पूर्वकालीनत्वं चार्थः । एवमन्यत्रापि वाक्यार्थो बोध्यः ॥

इति पदकृत्ये शब्दपरिच्छेदः ॥

---

**अयथार्थानुभवस्त्रिविधः संशयविपर्ययतर्कभेदात् । एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं संशयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥**

(न्या०) यथार्थानुभवं निरूप्यायथार्थानुभवं विभजते—**संशयेत्यादिना । एकेति** । एकधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितभावाभावप्रकारकज्ञानं संशय इत्यर्थः । भावद्वयकोटिकसंशयाप्रसिद्धेः स्थाणुर्वेत्यत्र स्थाणुत्वस्थाणुत्वाभावपुरुषत्वपुरुषत्वाभावकोटिक एव ॥

( प० ) अयथार्थानुभवं विभजते—**अयथार्थेति** । संशयं लक्षयति—**एकस्मिन्निति** । एकस्मिन्धर्मिणि एकस्मिन्नेव पुरोवर्तिनि पदार्थे विरुद्धा व्यधिकरणा ये नानाधर्माः स्थाणुत्वपुरुषत्वादयस्तेषां वैशिष्ट्यं संबन्धः तदवगाहि ज्ञानं संशय इत्यर्थः । घटपटाविति समूहालम्बनज्ञानस्य घटत्वपटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्या-

वगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय एकस्मिन्निति । घटः पृथिवीति ज्ञानस्यैकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्वरूपनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसङ्गवारणाय विरुद्धेति । घटत्वविरुद्धघटत्ववान् घट इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय नानेति ॥

**मिथ्याज्ञानं विपर्ययः । यथा शुक्तौ 'रजतम्' इति ॥**

(न्या०) **मिथ्याज्ञानमिति ।** अयथार्थज्ञानमित्यर्थः । विपर्ययो नाम भ्रमः ॥

(प०) मिथ्येति । यथार्थज्ञानवारणाय मिथ्येति । अयथार्थवारणाय ज्ञानेति ।

**व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः । यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति ॥**

(न्या०) **व्याप्यारोपेणेति ।** तर्के व्याप्यस्य व्यापकस्य च बाधनिश्चयः कारणम् । अन्यथा बाधनिश्चयाभाव इष्टापत्तिदोषेण तर्कानुत्पत्तेः ॥

(प०) तर्कं लक्षयति—व्याप्यारोपेणेति । असंभववारणाय व्याप्यारोपेणेति । पुनरसंभववारणाय व्यापकारोप इति । अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः धूमाभावो व्यापकः। यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभागोऽनुचितः, तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वात् स उदित इति बोध्यम् । स्वप्नस्तु पुरीतद्वहिर्देशान्तर्देशयोः संधौ इडानाड्यां वा मनसि स्थितेऽदृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जन्यते । स च मानसविपर्ययान्तर्भूतः ॥

**स्मृतिरपि द्विविधा । यथार्था अयथार्था च । प्रमाजन्या यथार्था अप्रमाजन्या अयथार्था ॥ सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ॥**

(न्या०) सुखं निरूपयति—**सर्वेषामिति** । इतरेच्छाऽनधीनेच्छाविषयत्वमिति निष्कर्षः । यथाश्रुते अनुकूलत्वप्रकारकवेदनाविशेष्यत्वस्य घटोऽनुकूल इत्याकारकज्ञानदशायामनुकूलत्वप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वस्य घटादावपि सत्त्वाद्घटादावतिव्याप्तिरिति निष्कृष्टलक्षणमुक्तम् । भोजनादावतिव्याप्तिवारणाय इतरेच्छानधीनेतीच्छाविशेषणम् । सुखेच्छायाः सुखत्वप्रकारकज्ञानमात्रजन्यत्वात् ॥

(प० ) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । सर्वात्मनामनुकूलमिति वेद्यं यत्तत्सुखमित्यर्थः । अहं सुखीत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमत्, धर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा सुखम् । अनुदुःखवारणाय सर्वेषामिति ॥

**प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ॥**

(न्या०) दुःखं निरूपयति—**प्रतिकूलेति** । अत्रापीतरद्वेषानधीनद्वेषविषयत्वमिति निष्कृष्टलक्षणम् । द्वेषविषयत्वमात्रोक्तौ सर्पादावतिव्याप्तिस्तत्रापि द्वेषविषयत्वसत्त्वादतस्तत्रातिव्याप्तिवारणायेतरद्वेषानधीनेति द्वेषविशेषणम् । सर्पजन्यदुःखादौ द्वेषात्सर्पेऽपि द्वेष इति सर्पद्वेषस्य सर्पजन्यदुःखद्वेषजन्यत्वादन्यद्वेषाजन्यद्वेषविषयत्वरूपदुःखलक्षणस्य सर्पादौ नातिव्याप्तिः । फलेच्छा उपायेच्छां प्रति कारणम् । अतः फलेच्छावशादुपायेच्छा भवति । एवं फले द्वेषादुपाये द्वेषः ॥

( प० ) **प्रतिकूलेति** । दुःखत्वजातिमत्, अधर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा दुःखम् । पदकृत्यं पूर्ववत् ॥

**इच्छा कामः । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः ॥**

(प० )इच्छां निरूपयति—**इच्छेति** । काम इति पर्यायः । इच्छात्वजातिमती इच्छा । सा द्विविधा—फलेच्छा उपायेच्छा च । फलं सुखादिकम् । उपायो यागादिः । द्वेषं निरूपयति—**क्रोध इति** । द्वेष्मीत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान् द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः । प्रयत्नं निरूपयति—**कृतिरिति** । प्रयत्नत्वजातिमान्प्रयत्नः । स त्रिविधः । प्रवृत्तिनिवृत्तिजीवनयोनिभेदात् । इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः । द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः । जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः । स च प्राणसंचारकारणम् ॥

**विहितकर्मजन्यो धर्मः । निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः ।**

(न्या०) धर्माधर्मौ निरूपयति—**विहितेति** । वेदविहितेत्यर्थः । । **निषिद्धेति** । वेदनिषिद्धेत्यर्थः ॥

(प०) धर्ममाह—**विहितेति** । वेदविहितेत्यर्थः । अधर्मवारणाय वेदविहितेति । यागादिक्रियावारणाय कर्मजन्य इति । स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तनभोगतत्त्वज्ञानादिना नश्यति । अधर्मलक्षणमाह—**निषिद्धेति** । वेदेनेत्यर्थः । धर्मवारणाय वेदनिषिद्धेति । वेदनिषिद्धक्रियावारणाय धर्मजन्य इति । स च भोगप्रायश्चित्तादिना नश्यति । एतावेव अदृष्टमिति कथ्येते वासनाजन्यौ च । वासना च विलक्षणसंस्कारः ॥

**बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः । बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य । अनित्या जीवस्य ॥**

(न्या०) **बुद्ध्यादयोऽष्टाविति** । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्माः ॥

संस्कारस्त्रिविधः । वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति । वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः । अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना आत्ममात्रवृत्तिः । अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः कटादिपृथिवीवृत्तिः ॥

इति गुणाः ॥

(न्या० ) संस्कारं विभजते—**संस्कार इति** । भावनां लक्षयति—**अनुभवेति** । अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वं भावनाया लक्षणम् । अत्रानुभवजन्यत्वे सतीति विशेषणानुपादाने आत्ममनःसंयोगेऽतिव्याप्तिरात्ममनःसंयोगस्य ज्ञानमात्रं प्रत्यसमवायिकारणत्वेन स्मृतिं प्रत्यपि कारणत्वादतस्तदुपादानम् । आत्ममनःसंयोगस्यानुभवजन्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिः । तावन्मात्रे कृतेऽनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः । ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वेनानुभवध्वंसस्याप्यनुभवजन्यत्वात् । अतः स्मृतिहेतुत्वोपादानम् । अनुभवध्वंसे स्मृतिहेतुत्वाभावान्नातिव्याप्तिः । [ ननु विशिष्टबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणता सकलतान्त्रिकमतसिद्धा । यथा दण्डविशिष्टबुद्धिं प्रति दण्डज्ञानस्य । दण्डविशिष्टबुद्धिर्नाम दण्डप्रकारकबुद्धिः । सा च दण्डी पुरुष इत्याकारिका । नहि दण्डमजानानः 'दण्डी पुरुषः' इति प्रत्येति । एवं च यत्रायं दण्ड इति प्रत्यक्षं जातं तदनन्तरं दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षमुत्पन्नं तत्र दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः । तद्धि स्वाव्यवहितपूर्वक्षणोत्पन्नदण्डज्ञानात्मकानुभवजन्यं, जनिष्यमाणे दण्डी पुरुष इत्याकारकस्मरणे कारणं च, स्मृतिं प्रत्यनुभवस्य कारणत्वादिति चेत् । अत्र ब्रूमः—अनुभवजन्यत्वं हि अनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वम् । तथा च दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितदण्डज्ञाननिष्ठकारणतायां न दण्डानुभवत्वमवच्छेदकं दण्डानुभवादिव दण्डस्मरणादपि दण्डप्रकारकबुद्धेरुत्पत्तेः । अतो दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति स्मरणसाधारणदण्डज्ञानत्वेनैव दण्डज्ञानस्य कारणतायाः स्वीकरणीयत्वेनानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्योक्तप्रत्यक्षेऽ-

१ कुण्डलितो ग्रन्थः प्रक्षिप्तः प्राचीनपुस्तकेष्वदर्शनात्, लेखस्यातिक्लिष्टत्वाच्च ।

भावान्नातिव्याप्तिः। भावनायां तु लक्षणमिदं वर्तते। तथाहि—अनुभवेनैव भावनाख्यसंस्कारोत्पत्त्या भावनात्वावच्छिन्नं प्रत्यनुभवस्यानुभवत्वेनैव कारणतया भावनात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितानुभवनिष्ठकारणतायामनुभवत्वमवच्छेदकम्। अतोऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्य भावनायां सत्त्वात्। नन्वेवं स्मृतिहेतुत्वविशेषणवैयर्थ्यम्। तद्ध्यनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रागुपात्तम्। नहि यथोक्तानुभवजन्यत्वविवक्षायामनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः प्रसज्यते। तथाहि—ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वं प्रतियोगित्वेन रूपेण, तत्तद्ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति च तत्तत्प्रतियोगिव्यक्तेस्तद्व्यक्तित्वेनेत्येवं ध्वंसप्रतियोगिनोः कार्यकारणभावः। तथा च ध्वंसनिष्ठकार्यतानिरूपिता यानुभवनिष्ठा कारणता तस्यां प्रतियोगित्वमवच्छेदकं तत्तद्व्यक्तित्वं च न त्वनुभवत्वमपीत्यनुभवध्वंसेऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वरूपानुभवजन्यत्वविरहादिति चेन्। न। स्मृतावतिव्याप्तिवारणायैव तदुपादानात्। तथाहि—स्मृतिं प्रत्यनुभव एव कारणं न तु स्मृतिरप्यतो घटस्मृतित्वावच्छिन्नं प्रति घटानुभवस्य घटानुभवत्वेनैव कारणत्वं न तु घटज्ञानत्वेन। इत्थंचानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्य स्मृतौ विद्यमानत्वादतिव्याप्तिः। उक्तविशेषणदाने तु स्मृतेः स्मृतिहेतुत्वाभावात्तद्व्युदासः॥ ]

(५०) संस्कारं विभजते—**संस्कारेति**। सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान्संस्कारः। घटादिवारणाय गुणत्वव्याप्येति। संयोगादिवारणाय आत्मविशेषगुणोभयवृत्तीति। ज्ञानादिवारणाय सामान्येति। द्वितीयादिपतनासमवायिकारणं वेगः। रूपादिवारणाय द्वितीयादिपतनेति। कालादिवारणाय असमवायीति। भावनां लक्षयति—**अनुभवेति**। आत्मादिवारणाय प्रथमदलम्। अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम्। स्थितिस्थापकमाह—**अन्यथेति**। पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम्। गन्धत्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वव्याप्येति। भावनात्वमादाय भावनावारणाय पृथिवीसमवेतेति। स्थितिस्थापकरूपान्यतरत्वमादाय रूपवारणाय मात्रेति। **इति गुणा इति**। द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः। द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम्। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्॥

**चलनात्मकं कर्म। ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम्। अधो-**

देशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य संनिकृष्टसंयोगहेतु-राकुञ्चनम् । विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् । अन्य-त्सर्वं गमनम् ॥

(प० )चलनेति । संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म । हल-पुस्तकवारणार्थं सत्यन्तम् । घटादिवारणाय विशेष्यदलम् । ऊर्ध्वेति । अपक्षेपण-वारणाय ऊर्ध्वेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि बोध्यम् । अधोदेशेति । उत्क्षेपणवारणाय अधोदेशेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम् । शरीरेति । प्रसारणादिवारणाय शरीरसंनिकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणं देयम् । विप्रकृष्टेति । उत्क्षेपणादिवारणाय विप्रकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणमप्यावश्यकम् ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् । द्रव्यगुणकर्मवृत्ति । परं सत्ता । अपरं द्रव्यत्वादि ॥

(न्या०) सामान्यं निरूपयति—नित्यमेकमिति । नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यलक्षणम् । नित्यत्वविशेषणानुपादानेऽनेक-समवेतत्वस्य संयोगादौ सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय नित्यत्ववि-शेषणम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वमात्रोपादाने आकाशा-दावतिव्याप्तिस्तद्वारणायानेकसमवेतत्वम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वविशिष्टसमवेतत्वमात्रोक्तावाकाशगतैकत्वपरिमाणादौ जलपर-माणुगतरूपादौ चातिव्याप्तिः । जलपरमाणुगतरूपादेराकाशगतैकत्व-परिमाणादेर्नित्यत्वात् समवेतत्वाच्च । अतः अनेकेति समवेतवि-शेषणम् ॥

(प० ) नित्यमिति । संयोगादिवारणाय नित्यमिति । कालादिपरिमाण-वारणाय अनेकेति । अनेकानुगतत्वं च समवायेन बोध्यम् । तेन नात्यन्ता-भावेऽतिव्याप्तिः ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ॥

(प० ) नित्यद्रव्यवृत्तयो इति । घटत्वादिवारणाय नित्यद्रव्यवृत्तय इति । आत्मत्वमनस्त्ववारणाय आत्मत्वमनस्त्वभिन्ना इत्यपि बोध्यम् ॥

नित्यसंबन्धः समवायः । अयुतसिद्धवृत्तिः । ययोर्द्वयो-र्मध्य एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुत-सिद्धौ । यथा अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रिया-क्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति ॥

(न्या०) समवायं निरूपयति—नित्येति । संबन्धत्वं विशिष्टप्रतीतिनियामकत्वम् । तावन्मात्रोक्तौ संयोगेऽतिव्याप्तिरतो नित्य इति विशेषणम् । (**ययोर्द्वयोर्मध्य इति** । यन्निष्ठकालनिरूपिताधेयतासामान्यं यदवच्छिन्नं तदुभयान्यतरत्वमयुतसिद्धत्वमित्यर्थः ॥)

(प०) नित्येति । आकाशादिवारणाय संबन्ध इति । संयोगवारणाय नित्येति । स्वरूपसंबन्धवारणाय तद्भिन्न इत्यपि बोध्यम् ॥

**अनादिः सान्तः प्रागभावः । उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य ॥**

(प०) प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति । घटादिवारणाय प्रथमदलम् । परमाणुवारणाय द्वितीयदलम् । पुनः प्रागभावः कस्मिन्कालेऽस्तीत्यत आह—उत्पत्तेरिति । कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियोगिसमवायिकारणे वर्तते इत्यर्थः ॥

**सादिरनन्तः प्रध्वंसः । उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य ॥**

(प०) ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादिवारणाय अनन्त इति । आत्मादिवारणाय सादिरिति । उत्पत्तीति । कार्यस्योत्पत्त्यनन्तरं स्वप्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिरित्यर्थः ॥ स च 'ध्वस्तः' इति प्रत्ययविषयः ॥

**त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्तीति ॥**

(न्या०) अत्यन्ताभावं निरूपयति—त्रैकालिकेति । (प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वे सत्यन्योन्याभावभिन्नत्वे सत्यभावत्वमत्यन्ताभावस्य लक्षणम् । ध्वंसप्रागभावान्योन्याभावाकाशादीनां वारणाय यथाक्रमं विशेषणोपादानम् । वस्तुतस्तु संसर्गाभावत्वं तादात्म्यभिन्नसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वम् ध्वंसप्रागभावयोश्च न संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमिति तेन तद्वारणे त्रैकालिकेति स्वरूपाख्यानमवेति बोध्यम् ॥ )

(प०) अत्यन्ताभावं लक्षयति—त्रैकालिकेति । त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । ध्वंसप्रागभाववारणाय त्रैकालिकेति, भेदवारणाय संसर्गेत्यादि ॥

**तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः । यथा घटः पटो नेति ॥**



(न्या०) अन्योन्याभावं निरूपयति—[illegible]

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ।

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायान्नंभट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः ॥

(न्या०) **सर्वेषामिति** । 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः' इति न्यायस्यादिमसूत्र उक्तानां प्रमाणप्रमेयादीनामित्यर्थः । विस्तरस्त्वन्यत्रानुसंधेयः ।

इति श्रीगोवर्धनविरचिता तर्कसंग्रहस्य न्यायबोधिनीव्याख्या समाप्ता ॥

(प०) पदार्थज्ञानस्य परमप्रयोजनं मोक्ष इत्यामनन्ति । स च आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः । आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वम् । दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनास्मदादीनामपि मुक्तत्वापत्तिवारणाय कालीनान्तम् । मुक्तात्मदुःखध्वंसस्यान्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वाद्वामदेवादीनां मुक्तात्मनामप्यमुक्तत्वप्रसंगात्स्वसमानाधिकरणेति प्रागभावविशेषणम् । दुःखानि चैकविंशतिः—शरीरं षडिन्द्रियाणि षड्विषयाः षड्बुद्धयः सुखं दुःखंचेति । दुःखानुषङ्गित्वाच्छरीरादौ गौणदुःखत्वम् । तथा च 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतेरात्मज्ञानसाधननिदिध्यासनमननसाधनत्वं पदार्थज्ञाने संजाघटीति । एवं च तत्त्वज्ञाने सति शरीरपुत्रादावात्मत्वात्मीयत्वाभिमानरूपमिथ्याज्ञानस्य नाशः । तेन दोषाभावः तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः । ततस्तत्कालीनशरीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां प्रारब्धकर्मणां नाशः । ततो जन्माभावः । 'नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् । ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् ॥ अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।' इत्यादिवचनात् 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इति श्रुतेश्च, गङ्गोपासनाकाशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मोक्षहेतुत्वम् । अत एव परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशतीति तत्त्वम् ॥

चक्रे चन्द्रजसिंहो हि पदकृत्यमिदं शुभम् ।
परोपकारकरणं माधवो दीक्षितामिदम् ॥

मं०

सिद्धौ

क्रियावन्तौ

इति श्रीमन्नयनभट्टहरदत्तमिश्रशिष्यश्रीचन्द्रजसिंहविरचितं पदकृत्यं समाप्तम् ॥

तानि ॥